



• सिद्धार्थ'कार

पूजनीया माता

श्रीमती

सरस्वतीदेवीकी

पुण्य-स्मृतिमें

मैं इतना और भी निवेदन कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि इस ग्रन्थको मैंने, जहाँतक हो सका है, शुद्ध खड़ी बोलीमें लिखनेका प्रयत्न किया है,—अर्थात् भ्रष्ट समास, उलटे समास, व्याकरण-असम्मत प्रयोग तथा ब्रज-बोली अथवा अन्य किसी बोलीकी पुट इसमें आप बहुत कम पावेंगे। 'कवि और कविता' में जो व्यक्त किये गये हैं वे सभी विचार मेरे ही मस्तिष्ककी उपज हों, ऐसा नहीं है, परन्तु वे मुझे सर्वांशमें मान्य हैं। उक्त भावोंको व्यक्त करना मेरे लिए आवश्यक इसलिए भी था कि उनके वशवर्ती होकर मैंने यह काव्य रचा है।

यह काव्य केवल इसीलिए 'महाकाव्य' नहीं है कि इसमें प्राकृतिक दृश्यों, ऋतुओं आदिका वर्णन है,—जैसा कि हमारे ग्रन्थोंमें महाकाव्यके लक्षण दिये गये हैं, वरन् इसलिए भी कि इसमें मनुष्य-जीवनकी उन सभी घटनाओंका समावेश है जो उसके जीवनमें किसी न किसी समय आ उपस्थित होती हैं।

प्रश्न हो सकता है कि इस कार्यके लिए मैंने भगवान् बुद्धके चरित्रको ही क्यों चुना? हमारी भाषामें राम कृष्ण आदि महापुरुषों अथवा देवताओंके, या यों कहिए अवतारोंके, चरित्र प्रचुरतासे विद्यमान हैं, परन्तु एक तो वे बहुत पहलेके होनेके कारण पिष्ट-पोषित भी हो चुके हैं,—साथ ही वे पौराणिक आवरणमें इतने ढके हुए हैं कि, रामचरितमानसके पात्रोंको छोड़कर, उनको एक बुद्धि-सम्मत रूप देना कभी कभी हास्यास्पद हो जाता है। भगवान् बुद्धके चरित्रमें यह विशेषता है कि वह उत्तरोत्तर उन्नत होता चला गया है। हम उनके चरित्रमें मनुष्यकी आत्माका पूर्ण विकास पाते हैं। किस प्रकार एक विशुद्ध आत्मा संसारके घातोंसे प्रतिघात पाती हुई निःश्रेयसकी ओर बढ़ती है तथा किस प्रकार उसको सफलता प्राप्त होती है, यही बुद्ध-चरित्रकी विशेषता है। उनके चरित्रसे मैं बहुत ही अभिभूत हुआ हूँ क्योंकि वह सर्वथा निष्कलंक है।

अन्तमें, मैं उन सभी पूर्ववर्ती एवं सम-कालीन कवियोंका कृतज्ञ हूँ जिनके ग्रन्थोंको पढ़कर मेरी प्रतिभा उद्दीप्त हुई और जिनके ग्रन्थोंसे मैंने पूरा पूरा लाभ उठाया है।

‘अनूप’

कविताका स्वरूप निर्णय करना कठिन ही नहीं, अशुभ भी है; क्योंकि, कविताका आश्रय न तो कोई पदार्थ है और न सिद्धान्त,—यह तो एक प्रकारकी मनःस्थिति है जो जितनी ही अधिक अभिगम्य है उतनी ही कम विवेचनीय। हाँ, माधारण रूपमें हम कह सकते हैं कि कविता एक ऐसी शक्ति है जो गद्य और पद्य दोनोंमें अनुभूत हो सकती है, जो केवल शब्दागमोंमें ही नहीं वरन् स्वरोंमें भी वर्तमान रहती है और जो नादके अतिरिक्त उन दृश्योंसे भी अपना हृदय दिला देनेके लिए फूट निकलती है जो वास्तु एवं स्थापत्यद्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसी मन-स्थितिकी,—ऐसी शक्तिकी, परिभाषा न हो सकनेके कारण हमें उसका शुद्ध स्वरूप पहिचाननेके लिए अन्वय-व्यतिरेकसे काम लेना पड़ेगा और यह देसना पड़ेगा कि कौन-सी वस्तु कविता है और कौन-सी नहीं।

कविता विज्ञान नहीं है क्योंकि कविताका क्षेत्र भाव है और सहचरी श्रद्धा है; जब कि विज्ञानकी क्रीडा विचारपर निर्भर है जिसका कि सहचर विश्वास है। कविताके जिस स्वरूपका यहाँ वर्णन हो रहा है वह उपन्यासमें भी रहता है परन्तु उपन्यास काव्य नहीं है। कविता केवल आलंकारिकता भी नहीं है क्योंकि आलंकारिकतामें सौन्दर्य ध्वनित होता है परन्तु कवितामें तो वह प्रतिध्वनित होता है और वह भी इस प्रकारसे जैसे किसी किसी समय गीतके 'जोड़' से ऐसे स्वर कानमें आते हैं जिनके वादन-मुहूर्तका शान तक हमको नहीं होता। आलंकारिक जो कुछ कहता है श्रोताओंसे कहता है और कवि 'स्वान्तः सुखाय' अपने भावोंको अपने आपपर ही प्रदर्शित करता है, जैसे कोई रजनीकी निस्तब्धतामें जंगलमें बाँसुरी बजाकर मस्त हो रहा हो। कविताद्वारा हम अपने भाव अपनेसे ही कहते हैं, आलंकारिकतासे हम अपना प्रभाव दूसरोंपर डालते हैं।

कविता 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की समष्टि है क्योंकि यदि सत्यता न हो तो रसका परिपाक नहीं हो सकता, सौन्दर्य न हो तो आलंकारिकता नहीं आवेगी और कल्याणकारिता न होगी तो कवियोंको अन्य सासारिक सफलता प्रायः प्राप्त होन न पर भी उन्हें 'सद्यः परिनिर्वृतये' का पाठ कौन पढ़ावेगा ?

इन तीनों गुणोंमें सौन्दर्य प्रधान है; क्योंकि, कविताका धर्म आनन्द देकर हृदयको सुसंस्कृत और उत्तेजित करना है और आनन्दके अत्याधिक स्वरूपको ही सौन्दर्यके नामसे पुकारा जाता है। अन्य ललित कलाओंके समान कविताका चरम उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है और संसारमें मनुष्य-जीवनको किस प्रकार सुखी बनाया जाय, इस समस्याको सुलझाना है। कवितामें माधुर्य आदि गुण सत्य और सुन्दरको पर्याय बना देते हैं और यही कारण है कि वेदनात्मक चित्रण भी प्रद और सुखावह हो जाता है।

कविता जब सभी प्रकारका सौन्दर्य-चित्रण करती है तो शब्द-सौन्दर्य भी उससे नहीं है और इसी कारण हमारे आचार्योंने अलंकारशास्त्रको काव्य-शास्त्रका एक

क्योंकि सांसारिक वस्तुओंको इस प्रकार सम्बद्ध करना और इस प्रकारसे एक दूसरेकी सुसङ्गति या तारतम्य बतलाना, जैसा कभी नहीं बताया गया है, कालान्तरमें वह मानसिक स्थिति उत्पन्न कर देता है जिसके कारण भाव-चित्र भाव-चिह्नमें परिवर्तित हो जाते हैं। फलतः, यदि पुनः अच्छे कवि न उत्पन्न हुए तो भाषाकी अभिव्यंजना-शक्ति रुक जाती है। इसीलिए कहा गया है कि, समाजकी प्राथमिक स्थितियोंमें प्रत्येक लेखक कवि होता था; और अब भी अनुभूत होता है कि प्रत्येक नवयुवक कुछ न कुछ काव्यमय भाव रखता है। अपनी प्राथमिक स्थितिमें समाजके तथा नवयौवनमें मनुष्यके भाव निकटतः एक ही होते हैं क्योंकि भाव एवं भाषा उस समय काव्यमय हो जाती है।

कवि किसे कहते हैं ? उसका कार्य क्या है ? वह किसे संबोधित करता है और उसे किस प्रकारके माध्यम अर्थात् भाषाद्वारा संबोधित करना चाहिए ?—कविमें भावना-शक्ति अन्य मनुष्योंसे अधिक तीव्र होती है, उसका उत्साह और जीवनके प्रति भाव अधिक उत्तेजित होता है, उसकी आत्मा अधिक उदार और विस्तृत होती है और वह जो कुछ कहता है अपनेको या अपने जैसे दूसरे मनुष्यको संबोधित करके व्यक्त करता है। वह अपनी ही रागात्मिका प्रवृत्तियोंमें मग्न रहता है, जीवनके विविध अंगोंपर वह अपनी तीव्र दृष्टि डालता है, संसारकी गतिमें जो मानव-प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं उनको वह वाणी देता है और जो अदृश्य रहती हैं उनको प्रकाशमें लाता है। साथ ही साथ उसमें एक और प्रवृत्ति होती है जो अ-कवि मनुष्योंमें नहीं पाई जाती,— वह अनुपस्थित भावोंका भी चित्रण करता है और इस प्रकारसे करता है जैसे वे उपस्थित ही हैं। वह उन भावोंको भी व्यक्त करता है जो केवल दूसरे लोगोंद्वारा ही अनुभूत हुए हों और इसीलिए उसमें अभिव्यंजना इतनी अधिक मात्रामें उत्पन्न हो जाती है कि वह उन भावोंको, कारण न होते हुए भी, अपने हृदयमें उत्पन्न कर सकता है। इस तरह, कविको सर्व-भूत-हृदय बनना पड़ता है।

कविके हृदयमें सौन्दर्यकी पूर्णता भरी रहती है। वह सौन्दर्यके शाश्वत स्वरूपको पहिचानता है। जहाँ सहृदय श्रोताओंमें केवल भावयित्री प्रतिभा होती है वहाँ कविमें कारयित्री प्रतिभा होती है जो उसी वृक्षके उसी बीजको उसी रूपमें उगाते हुए भी विभिन्नता और नवीनता प्रदान कर देती है और, साथ ही, मनुष्यमें जो कुछ पवित्रता है अथवा निमग्नमें जो कुछ नैतिकता है उसके साथ पूर्ण सहानुभूति और सहज सद्भाव प्रकट करते हुए महत्ता और उदारताको पूर्ण आदर देती है।—यही नहीं, सारे संसारके सौन्दर्य और महत्ताको एकत्रित करके वह एक अपना ही संसार खड़ा करती है। इस प्रकार अपने लोकका निर्माण करके कवि संस्कृत और आज्ञेयी माध्यमद्वारा सहृदय पुरुषोंको आकृष्ट करके उसमें वसता है। मनुष्योंको आकर्षित करनेके लिए वह अलंकारोंका प्रयोग करता है क्योंकि साधारण शब्द इतने निर्वल होते हैं कि वे गंभीर और

उदार भावोंका भार वहन नहीं कर सकते। साथ ही, अमूर्त भावोंको साकार करनेका और साधन ही नहीं है इसलिए अलंकारोंका साधन गौण होते हुए भी अनिवार्य हो जाता है। इस दृष्टिसे वह भी कहा जा सकता है कि छन्दका आवरण भी उचित रूपसे ही काव्यपर चढ़ाया गया है क्योंकि छन्द कविके अन्तर्नादका वाद्य स्वरूप है। अतएव, छन्दका प्रयोग भी कविकी प्रतिभाका परिचायक है न कि बाधक, क्योंकि कवि उसे अपनी स्वतंत्र बुद्धिसे प्रयुक्त करता है। वह शास्त्रत गान, जो कविके हृदयमें ध्वनित हो रहा है, अलंकारके वायु द्वारा संचालित होकर छन्दकी भित्तिपर प्रतिध्वनित होता है। कविता संगीतमय विचार है और कवि वह है जो संगीतमय दंगसे सोच सकता है।

कवियोंके मस्तिष्ककी वनावट ही दूसरी होती है। उनके विचार और भाव ग्लोबल-द्वारा एक दूसरेसे संबद्ध रहते हैं। यही सबे कविकी पहिचान है कि उनके जीवनमें उपयुक्त सिद्धान्त अनवरत कार्य करता रहता है। और, जिन्होंने केवल अभ्यासद्वारा कविता सीखी है उनके लिए कविता करना एक गौण बात है। ऐसे कवि पहले अपने भावोंको गल्लमें नियत कर लेते हैं और फिर पद्यमें बदल देते हैं। परन्तु, सदा कवि अपने विषयको कवितामें ही देखता है। अभ्यासद्वारा कविता करनेवाले कवियोंकी कृतियोंमें विचारकी प्रधानता होती है,—अलंकारसे रस दब जाता है, क्योंकि उनका तो एवमात्र उद्देश्य यही है कि वह भावोंके आवरणमें अपने विचार उपरिधत बने; परन्तु, सहजकविकी कवितामें रसका अतिरेक होता है। वह विचारोंका गौण स्थान देता है। उसकी कृतिमें अलंकारोंका विभिन्न स्थान नहीं मिलता। वह तो अपने भाव-प्रवाहमें

अधिक अंश जिस कविकी कृतिमें होगा वह उतना ही बड़ा कवि होगा। महाकवि वह है जिसकी कवितामें विचार, भाव, व्यक्तित्व, कल्पना, प्रवाह आदि अत्यधिक मात्रामें उपस्थित हैं। ऐसे कवि विश्व-कवि कहे जाते हैं,—इसलिए नहीं कि वे सारे संसारमें प्रसिद्ध हैं, वरन् इसलिए कि सारा संसार उनमें उपस्थित है।

कवियोंकी महत्ता उनकी मौलिकतासे नापी जाती है। मौलिकताका यह अर्थ नहीं है कि कवि अन्य मनुष्योंसे भिन्न हृदय रखता हो। कवि मानव-समाजमें रहता है, घटना-चक्रों और पात्रोंके मध्यमें विचरण करता है और मनस्त्वृष्टिके लिए उनका चित्रण करता है। उसकी दशा उस मकड़ीकी भाँति होती है जो अपने पेटसे जाल निकाल कर एक चक्र बना देती है। सभी स्थिति, चाहे जैसा उनको मकान बनाना हो, ईंट चूनेका प्रयोग तो करेंगे ही। इसीलिए, कहा गया है कि, सर्वोत्तम प्रतिभाशाली कवि सारे संसारका ऋणी होता है। कवि कोई विज्ञित मनुष्य नहीं होता जो, जो कुछ हृदयमें आवे, व्यक्त करता जाय; वरन् उसका हृदय देश और कालके द्वारा सीमित तथा मर्यादित होता है। कवि प्रभात-कालमें उठकर यह नहीं सोचता कि आज मैं नवीन छन्द गढ़ूँगा, आज मैं एक नवीन अलंकारका प्रयोग करूँगा, आज मैं ऐसा भाव सोच निकालूँगा जिसे आज तक त्रैलोक्यमें किसीने न सोच पाया हो इत्यादि, वरन् वह तो उस समय अपनेको विचार-प्रवाहमें बहता हुआ पाता है और वह प्रवाह समकालीन आवश्यकताओंसे प्रवाहित होता है। कवि उसी मार्गका अनुसरण करता है जिसपर सबकी दृष्टि पड़ती है और उसी दिशाको जाता है जिधर समाजका आदर्श निर्देश करता है।

प्रत्येक महाकविको साधन एकत्रित किये हुए मिलते हैं और वह उनका उपयोग सत्यता एवं सहानुभूतिके साथ करता है। 'नाना-पुराण-निगमागम-सम्मतं' तो उसके सम्मुख रहता ही है, साथ ही 'कचिदन्यतोऽपि' उस एकत्रित किया हुआ मिल जाता है। उसे कुछ भी हूँदने नहीं जाना पड़ता। अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाय कि एक महाकवि अपनी सारी भाव-संपत्ति संसारसे इकट्ठा करता है क्योंकि उसका हृदय जनताके विचार-प्रवाहका माध्यम है। सारा संसार उसीका कार्य करता है और वह अपने मस्तिष्कके माध्यमद्वारा सारे प्राणियोंके विचार व्यक्त करता है। तुलसीदासका उदाहरण सम्मुख है। हिन्दीमें उनकी श्रृंगीका कोई महाकाव्यकार हुआ ही नहीं, वरन् उनको तो अन्य-भाषा-भाषियोंतकने विश्व-कवि माना है। परन्तु, यदि आप रामचरितमानसके तुलनात्मक दृष्टिसे देखें तो आपको ज्ञात हो जायगा कि गोस्वामीजीने अपने पूर्ववर्ती रामायण-कारोंके उत्तमोत्तम भावोंको मुक्तकंठ होकर अपनाया है,—ऐसा कुछ लिखा ही नहीं जो पूर्ववर्ती कवियोंकी दृष्टिमें न आया हो। इसपर भी संभार उन्हे महाकवि कहता है, और ठीक कहता है। रामायण तथा महाभारतके परवर्ती कवियोंमें सर्व-प्रथम अश्वघोष ही महाकाव्य-कार माने जाते हैं, उनके अनन्तर कालिदास। अश्वघोषकी छाप स्पष्टरूपसे कालिदासपर पड़ी

होगी और अनुकरणद्वारा उन्होंने अपने आदर्शके प्रति तदाकार वृत्ति प्राप्त की होगी। कविता मानव-हृदयको उच्च और विशाल बनाती है क्योंकि कविताद्वारा हृदयको भाव, विचार और तुष्टि प्राप्त होती है। कविता श्रोताकी आँखोंपरसे परदा उठा देती है जिससे वह संसारके गूढ़ सौन्दर्यको देखने लगता है और अपरिचित वस्तुओंको इस प्रकार देखता है मानो वह परिचित ही रही हों। कविता हमारे कल्पनाके वृत्तको विस्तृत करती है, उसमें नवीन आनंदके विचार भरती है तथा हमारी भावनाओंको और भी अधिक उत्तेजित करती है। अतएव, कविका यह परम कर्तव्य है कि वह हमारे हृदयमें सार्वभौम भावनाएँ भरे।

अब प्रश्न उठता है कि कविको कैसे भाव काव्य-बद्ध करने चाहिए? अथवा, सभी देशों तथा सभी कालोंमें कविताके शाश्वत विषय क्या रहे हैं? जीवनकी घटनाएँ और मनुष्य-जीवनका घटना-चक्र, इनमें मानव-अभिरुचि स्वभावतः देखी गई है और कवियोंद्वारा इनका वर्णन अत्यन्त आकर्षक ढंगसे किया गया है। यह घटना-चक्र क्या है?

वे कार्य या घटनाएँ, जो मनुष्यकी मौलिक भावनाओंपर अपना पूर्ण प्रभाव डालती हैं, मनुष्य-जीवनमें सर्वत्र विद्यमान रहती हैं और समयका इनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चूँकि यह भावनाएँ शाश्वत और समान हैं, इसलिए, कविताके विषय भी शाश्वत और समान हैं। अतएव, किसी घटनाके प्राचीन या आधुनिक होनेसे कवितापर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। जो कुछ उच्च और महान है वह हमारे हृदयको रुचिकर प्रतीत होता है और जो कुछ रुचिकर है वह काव्यका विषय है। सहस्रों वर्ष पुराने घटना-स्थल, यदि वह महत्त्वपूर्ण हैं तो, आधुनिक कालमें भी उन सहस्रों घटनाओंसे अधिक रुचिकर होंगे जो उतने महत्त्वकी नहीं हैं। यद्यपि, आधुनिक विषय आधुनिक भाव और भाषाद्वारा व्यक्त किये जाते हैं, और उनमें कथित विचार प्रायः आधुनिक होनेके कारण परिचित ही होते हैं, तथापि, उनका इतना प्रभाव इसलिए नहीं होता कि वे क्षणिक और एकदेशीय भावोंको प्रदर्शित करते हैं; परन्तु, कविता हमारी शाश्वत भावनाओंको उत्तेजित करती है और जो काव्य सार्वभौम भावोंसे ओत-प्रोत होगा वह इसीलिए श्रेष्ठ माना जायगा। लिखनेका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक कविको अपनी कविताका विषय पौराणिक ग्रन्थोंसे ही लेना चाहिए। नहीं, कहनेका उद्देश्य यह है कि कविको ऐसे विषय चुनने चाहिए जो सार्वभौम हों, अर्थात् सबको रुचिकर हो सकें, महान् एवं प्रभावशाली हों,—अर्थात् श्रोता या पाठकके चरित्रपर उनका प्रभाव उन्नायक हो। एकदेशीय विषयोंपर भी उत्तमोत्तम कविता भले ही की जा सके परन्तु यदि प्रतिभाका इस प्रकार अपव्यय न किया जाय तो बहुत अच्छा।

प्रश्न उठ सकता है कि कविताका कौन-सा प्रकार सर्वश्रेष्ठ है? उत्तर है कि महाकाव्य। क्योंकि (१) इसमें सर्वांगीन जीवनकी झलक रहती है (२) इसमें शृंगार,

चरम सीमाको पहुँच चुके हैं। परन्तु उनकी 'शक्ति'ने अपना प्रदर्शन कभी नहीं किया और न उन्होंने केवल एक ही राग अलापा। उन्होंने जीवनके विभिन्न अंगोंपर पूर्णतया दृष्टि-निक्षेप किया। एक महाकविनी कवितामें कोई विभिन्नता नहीं होती, कोई अद्भुतता नहीं होती,—वहाँ तो जो होना चाहिए वही होता है। उच्चको वह उच्च और नीचको नीच ही कहता है। परन्तु, वह ऐसा शक्तिशाली अवश्य होता है जैसी कि प्रकृति,—जो कुछ ही देरमें मरुस्थलकी रेणुका पर्वत-शिखरपर पहुँचा देती है और समुद्रके जलको वायुके रथपर बिठा देती है। महाकवि संध्याके भू-भंग और प्रभातके स्मितका चित्रण समान ढंगसे करता है।

भाषा, वर्ण, स्वरूप, धर्म तथा सामाजिक नियम आदि सभी कविताके उपकरण हैं। परन्तु, यदि हम कविताको एक सीमित वस्तु मानते हैं तो कहना पड़ेगा कि काव्य शब्दोंका, अथवा भावोंका, एक विशेष आरोहावरोह, संगति, संक्रम या तारतम्य है जो मानव-हृदयके किसी गूढ़ अन्तस्तलसे उत्पन्न होता है और जिसकी उत्पत्ति भाषाकी प्रकृतिसे संबंध रखती है और भाषाकी प्रकृति हमारे राग-द्वेष, सुख-दुःख आदिसे संबद्ध होनेके कारण नाना प्रकारके आवरण धारण करती है। भाषा कल्पनाकी कन्या है जो विचारके साथ विवाहित की गई है। भाषा भाव तथा उसके अभिव्यंजनकी एकमात्र माध्यम है। ध्वनि, विचार और भाव पारस्परिक संबंध रखते हैं,—एकका प्रभाव दूसरेपर पड़ता है। इसीलिए, कवियोंकी भाषामें एक प्रकारकी समता और स्वरैकता सर्वत्र पाई जाती है जिसके बिना वह भाषा काव्य-भाषा नहीं रह जाती। वह भावकी अभिव्यंजनापर भी अपना अत्यधिक प्रभाव डालती है,—यहाँ तक कि कविताको एक भाषासे दूसरी भाषामें अनूदित करना असंभव हो जाता है। कविताको भाषान्तरित करना कमलके पुष्पको जलाकर उसका सुवर्ण निकालना है।

काव्यमें बारबार एक विशेष प्रकारकी ध्वनि या शब्दका उत्पन्न होना, और कविताका संगीतसे घनिष्ठ संबंध होना,—इन दो कारणोंने छन्दकी उत्पत्ति की है यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि कविता छन्दोवद्ध ही हो। छन्दोवद्ध रचनाको ही यदि हम काव्य मानें तो कादम्बरी-कारको कोई कवि ही नहीं कहेगा और फिर 'वाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं' श्रुता पड़ जायगा, दशकुमार-चरितके 'पद-लालित्य'का कोई मूल्य ही नहीं रह जायगा और दंडीको आचार्य मानना ही एकदेशीय हो जायगा।

सारांशतः सार्वदेशीय भावोंसे युक्त मनुष्य-जीवनकी झलकका नाम कविता है। मानव-प्रकृतिमें गूढ़ तत्त्वों एवं नियमोंका याथातथ्य व्यक्तीकरण कविताका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। कविता सार्वभौम इसलिए होती है कि वह मनुष्य-प्रकृतिका चित्रण इस प्रकारसे करती है कि यदि मानव-प्रकृतिकी सभी विभिन्नताएँ एकत्रित की जायें तो वे उसीमें समा जायें। समय उन विभिन्नताओं तथा मानव-जीवनकी घटनाओंपर अपना कोई प्रभाव नहीं रखता वरन् काव्यकी तीव्रताको और भी अधिक उत्तेजित कर देता है और कवितागत शाश्वत सत्यको नया रूप प्रदान कर

देता है। कविता एक ऐसा आदर्श है जो विद्वानों को भी सुन्दर और सुन्दरको सुन्दरतर बना देता है। अतएव, कहा जा सकता है कि कविता मनुष्य और प्रकृतिकी प्रतिबिम्बित है और उसका उद्देश्य मनुष्यको मनुष्य मानकर, न कि इतिहासज्ञ, ज्योतिषी आदि जानकर, आनन्द पहुँचाना है। कविता संसारके ज्ञानका सूक्ष्मातिवृक्ष तत्त्व है अथवा, यों कहें, कविता प्रथम और अंतिम ज्ञान है। अतएव, कविता लोकोत्तर सौन्दर्यके कल्पनाको विभूषित ही नहीं करती वरन् संसारके दुःखोंके निवृत्ति देकर एक भावना बन जाती है जो मानव-जीवनकी नीतियत्ताको व्यक्त करती है और ऐसे सत्य एवं पवित्र जीवनकी ओर आकर्षित करती है जो व्यावहारिक जीवनका आदर्श है।

कविताका कार्य द्विधा है। एक ओर तो वह ज्ञान, आनन्द और शक्तिके नये साधन उत्पन्न करती है और दूसरी ओर उन साधनोंको एक तारतम्यमें व्यक्त करती है जिससे उत्तम सौन्दर्य और अच्छाई आ जाती है। इस सौन्दर्यको भावकी गति और भी तीव्र कर देती है। सामाजिक जीवनमें जब ऐसा काल आ जाता है कि लोग स्वार्थ और अनुदारताके सिद्धान्तोंसे दबने लगते हैं तथा वास्तव जीवनके उपकरण आन्तरिक जीवनके सौन्दर्यको दबा देते हैं, अथवा कोई ऐसी विशृंखलता उत्पन्न हो जाती है जो मानव-हृदयको असंतुष्ट और अधीर बना देती है, तब कविताकी उपयोगिता भली भाँति प्रकट होती है क्योंकि उस समय शरीरके दोषसे आत्मा दब जाती है और सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है। कविता ऐसे ही रोगोंकी औषधि है।

कविता सत्यमेव दिव्य है। वह ज्ञानका केन्द्र भी है और वृत्त भी। यह वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत सारे विज्ञान हैं और सारे विज्ञान इस विज्ञानका सुँह ताकते हैं। कविता प्रत्येक प्रकारकी विचार-धाराओंका उद्गम और संगम-स्थान है। कवितासे सभी शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है और सभी शास्त्र कविताका आदर करते हैं। यदि कल्प-वृक्ष शुष्क हो जाय तो सुख-शान्तिकी छाया और फल हमें न प्राप्त हो सकें और जीवनकी प्रत्येक शाखा नीरस शत होने लगे। कविता सभी संचारिक पदार्थोंके गुणोंको बढ़ा देती है। जिस प्रकार गुलाबमें सुगन्ध रहती है अथवा सेनेमें सुवर्ण रहता है उसी प्रकार कविता साहित्य और समाजकी सुगन्धि और सुवर्ण है। यदि कवितामें वह उद्धान न होती जिससे वह ज्ञान और प्रकाश उठ अन्तर्हित खींच लानेमें समर्थ होती है जहाँ भाव और विचार पर तक नहीं नार सकते; तो सत्य-प्रेम, देश-प्रेम, भक्ति, मित्रता आदि सद्गुणोंको कौन पूहता, नैसर्गिक दृश्योंके कौन आकर्षित होता, जीवनमें क्या रह जाता अथवा लोग मृत्युके अनन्तर किस बातकी ज़रूरत करते ? उच्च कोटिकी कविता सीमा-रहित होती है। वह उच्च बीजके स्रष्टा होती है जिसमें वृक्षका साध स्वरूप निहित रहता है। एक आवरणके अनन्तर दूसरा आवरण हटते चले जाइए, परन्तु अन्तःस्थित सौन्दर्य नष्ट नहीं किया जा सकता। नशाकान्त्य अथवा कोई भी उच्च काल एक घण्टके स्रष्टा है जिसमें ज्ञान और आनन्दका नीर

वहा ही करता है, जिसका उपयोग प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक युग करके दूसरे मनुष्यों और युगोंके लिए छोड़ जाता है। सारांश, कवियोंका प्रभान समकालीन तथा परवर्ती समाजपर अत्यधिक पड़ता है।

हाँ, कुछ लोगोंने कवियोंके मुहुटको उतारकर विचारकों, कारीगरों तथा राजनीतिक नेताओंके सिरपर रखना चाहा है। उनका कथन है कि समाजमें कवियोंकी उपयोगिता नहीं है। देखें, उनका कथन कहाँ तक ठीक है।

आनन्द अथवा उपभोग वह पदार्थ है जिसे प्रत्येक प्राणी प्राप्त करनेकी इच्छा करता है और जब वह प्राप्त हो जाता है तो वह शान्त हो जाता है। आनन्द दो प्रकारका होता है,—एक क्षणिक और दूसरा शाश्वत। उपयोगिता या तो प्रथम प्रकारके आनन्दकी वृद्धि करती है या दूसरे प्रकारके। प्रथम प्रकारके अर्थके अनुसार जो साधन हमारे रागोंको प्रबल और पवित्र बनाते हैं, हमारी कल्पनाको विस्तृत करते हैं अथवा प्रोत्साहन प्रदान करते हैं, वे उपयोगी हैं। हाँ, एक प्रकारकी उपयोगिता और भी है,—वह जो हमारी शारीरिक आवश्यकताओंको पूरी करती है, वह जो समाजको सुरक्षित रखती है, वह जो उसमें सुधारका बीज बोती है और पारस्वरिक स्वार्थके लिए जो मनुष्योंको सहिष्णुता और उदारता सिखलाती है। इस प्रकार समाजकी सेवा करनेवाले नेताओंका स्थान समाजमें अवश्य है। परन्तु, वे लोग भी कवियोंके बतलाये हुए मार्गपर चलते हैं। उनकी उपयोगिता समाजमें तभीतक है जबतक वे मनुष्यके निम्नश्रेणीके विचारोंको अपनी उच्चता और उदारतासे दबाये रखनेमें समर्थ होते हैं। वे लोग राजकीय नियम बनावें, समुद्रपर पुल बाँधें तथा समाजमें दंड-विधान रचें, परन्तु जब वे सच्ची कल्पनासे च्युत हो जाते हैं तब समाजकी वही दशा हो जाती है जो इस समय योरोपीय राष्ट्रोंकी है,—जहाँ संपत्ति और विपत्तिका नग्न नृत्य हो रहा है, जिनके पास अधिक संपत्ति है वे अधिकाधिक चाहते हैं और जिनके पास नहीं है वे उत्तरोत्तर रंक होते जा रहे हैं, जहाँ राष्ट्रकी नौका भँवर और वायु-वेगके मध्य डगमगा रही है। आसुरी संपत्तिके यही लक्षण हैं। आनन्द या सुखकी परिभाषा करना कठिन है,—कवितामें तो वह और भी दुष्कर है क्योंकि यहाँ तो करुण रस भी आनन्दको उत्पन्न करता है, दुःखमें भी सुखकी छाया रहती है, रागमें भी वेदनाकी झलक दिखाई पड़ती है,—यहाँतक कि सुखमें जो दुःख अनुभूत होता है वह दुःख भी कभी कभी नहीं प्राप्त होता। साथ ही यह भी नहीं है कि आनन्द-प्रकाशकी छाया दुःख ही हो। प्रेम और मैत्रीका सुख, निसर्ग-सत्कारका आनन्द, कविताके समझनेका और उससे भी अधिक करनेका सौख्य, शुद्ध, पवित्र और अनिर्वचनीय होता है। इस प्रकारके आनन्दमें अत्यधिक उपयोगिता है और जो इस आनन्दको उत्पन्न करते हैं वे ही सच्चे कवि कहलाते हैं।

सर्वोच्च मस्तिष्कवाले मनुष्योंके सर्वोपरि विचारोंका नाम कविता है। हमें ज्ञात है कि

बन जाते हैं तथा हमारी आन्तरिक दृष्टिपरसे परिचयका परदा हट जाता है जिसे हमें अपने ही अस्तित्वपर विस्मय होने लगता है। कविता हमें बाध्य करती है कि जो कुछ हम देखें उसका अनुभव करें तथा जो कुछ हम जानते हैं उसकी कल्पना करें। नित्यशः हमारे विचार इस संसारको परिचित बनाने चले जाते हैं, यहाँ तक कि हमारे हृदयमें संसारके प्रति कोई कल्पना ही नहीं उत्पन्न होती,—कवि इस संसारका विनाश करके हमारे हृदयमें एक नवीन लोक उत्पन्न कर देता है।

कवि जनताके लिए जिस प्रकार ज्ञान, आनन्द, सत्य, यश आदिके भाव उपस्थित करता है, उसी प्रकार उसे भी सबसे अधिक प्रसन्नचित्त और विनार-शील होना चाहिए। यश तो उसका सर्वश्रेष्ठ होता ही है। आचार्य मम्मटने भी कहा है 'काव्यं यशसे'। कवि होनेके कारण वह सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी और आनंदी भी होता है, वह किसीसे छिपा नहीं है। संसारके सर्वश्रेष्ठ कवियोंका चरित्र सुन्दर और निष्कलंक रहा है,—उनमें ज्ञानकी मात्रा सबसे अधिक रही है और यदि उनके जीवनके अन्तरंगको देख सकें तो वे बड़े ही भाग्यशाली महापुरुष हुए हैं। यदि हम मान भी लें कि वाल्मीकि व्यास थे, कालिदास व्यभिचारी थे, तुलसीदास लैण थे, विहारी शृंगारी थे, भूषण माट थे; तो भी, उनके काव्योंने उनके सब कलंक धो दिये और वे सुधा-घौत सौधके सदृश हमें आनन्द दे रहे हैं। कविगण ईश्वर-प्रदत्त मंत्रोंके दृष्टा हैं,—भविष्यकी जो छाया वर्तमान-पर पड़ रही है उसको प्रतिबिम्बित करनेके आदर्श हैं; वे ऐसे शब्द हैं जो, जिसे व्यक्त करते हैं, उसे समझते तक नहीं, ऐसे प्रोत्साहन हैं जो जीवन-संग्रामके लिए निमंत्रण देते हैं, ऐसे प्रभाव हैं जो स्वयं अचल हैं, तथा संसारके माने हुए अग्रणी हैं।

और कविता!—संसारके सभी सौन्दर्य उससे निःसृत होते हैं, उसीके अनुसार मानव-जीवन संचालित होता है, वही समाजका कल्याणकारी अंग है।

‘अनूप’

१—शुभ स्वप्न

दृढतविलम्बित

गिरि हिमालयके उपकूलमें

कपिलवस्तु-पुरी अति रम्य थी;

बहु प्रसिद्धिमयी धन-अन्नदा

सुभग-शासन-भूपित भूमि थी ।

विनय-युक्त उदार गभीर थे,

अति सहिष्णु तथा अति धीर थे;

परम न्याय-परायण वीर थे,

सतत-संयत भूपति शाक्यके ।

परम शाक्त अनूपम विक्रमी

अति पुनीत जितेन्द्रिय संयमी;

दृढविमयी उनकी यश-चन्द्रिका

विनत थी करती शरदिन्दुको ।

प्रकट पादसु भी जब हो गया,
घन-घटा घनघोर धिरी यद्वा,
कपिलदन्तु-चुपाल-प्रतापसे
सकुच-संयुत वासत्र रो पड़ा ।

अमित भूप-विलोचनकां प्रभा
शरदके अरविन्द न पा सके,
निरख न्याय नराल-सगृह भी
सर-निमज्जन था करने लगा ।

फिर चली ऋतुकी बढ़ शीतता,
परम पिंगल आतप हो गया,
नृपतिके सम-दृष्टि-प्रभावसे
न घटता-बढ़ता बहु शैत्य था ।

शिंशिरके ऋतु-सी नृपकी कथा
हृदयमें सुख-शीतल हो लगी,
प्रकृति-गृह समाज-कुरीनियाँ
सकल पल्लव-सी गिरने लगी ।

शादृलविक्रीडित

पृथ्वी-भार उतारना प्रकट हो नारी रमा जीतना,
माहेयी प्रतिपालना. स्वजनको साहाय्य देना सदा,
भूमि स्थापित धर्म-भाव करना, संसारकी योजना
शौरिने यदि आठ जन्म रख की, वे एक ही जन्ममें ।

प्रकट पावस भी जत्र हो गया,
घन-घटा घनघोर धिरी यदा,
चापिलवस्तु-नृपाल-प्रतापसे
सकुच-संयुत वासत्र रो पड़ा ।

अमित भूप-विलोचनका प्रभा
शरदके अरविन्द न पा सके,
निरख न्याय मराल-समूह भी
सर-निमज्जन था करने लगा ।

फिर चली ऋतुकी बढ शीतता,
परम पिंगल आतप हो गया,
नृपतिके सम-दृष्टि-प्रभावसे
न घटना-बढ़ता बहु शैत्य था ।

शिंशिरके ऋतु-सी नृपकी कथा
हृदयमें सुगव-शीतल हो लगी,
प्रकृति-गृह समाज-कुरीनियाँ
सकल पञ्चव-सी गिरने लगी ।

शादृक्कविक्रीडित

पृथ्वी-भार उतारना प्रकट हो सारी रसा जीतना,
माहेयी प्रतिपालना, म्वजनको साहाय्य देना सदा,
भूमें स्थापित धर्म-भाव करना, संसारकी योजना
शौरीने यदि आठ जन्म रख की, वे एक ही जन्ममें ।

सकल भारतवर्ष प्रसन्न हो
 कर रहा चूपका गुण-गान था;
 सुन रही वन मुग्ध दिगंगना
 सकल-गाम प्रकाम प्रमोदसे ।

सकल शिदिमयी निधि ऋषिकी
 इस प्रकार बड़ी चूप-राज्यमें,
 जिस प्रकार नवागबुद-वारिसे
 बड़े बड़े शालभादि असांख्य हों ।

द्वय गणगण गुण-गणधिका
 सब प्रजा सुख-गर्भवती हुई,
 नगरकी किंग भाँति कथा कोंडे,
 गीत-गेयक गेयक हो उठा ।

एक एक भय था पाद-भर्षिमें,
 द्वय एक एक केवल दुःखमें,
 मरने, मरने, जीव कु-प्रत्येक
 मरने, मरने, बड़े प्रसिद्ध था ।

प्रकट पावस भी जब हो गया,
घन-घटा घनघोर धिरी यत्र,
कापिलवस्तु-नृपाल-प्रतापसे
सकुच-संयुत वासव रो पड़ा ।

अमित भूप-त्रिलोचनका प्रभा
शरदके अरविन्द न पा सके,
निरख न्याय मराल-समूह भी
सर-निमज्जन था करने लगा ।

फिर चली ऋतुकी वढ़ शीतता,
परम पिंगल आतप हो गया,
नृपतिके सम-दृष्टि-प्रभावसे
न घटता-वढ़ता बहु शैत्य था ।

शिंशिरके ऋतु-सी नृपकी कथा
हृदयमें सुख-शीतल हो लगी,
प्रकृति-गूढ़ समाज-कुरीतियाँ
सकल पल्लव-सी गिरने लगीं ।

शार्दूलविक्रीडित

पृथ्वी-भार उतारना प्रकट हो सारी रसा जीतना,
माहेयी प्रतिपालना, स्वजनको साहाय्य देना सदा,
भूमें स्थापित धर्म-भाव करना, संसारकी योजना
शौरीने यदि आठ जन्म रख की, वे एक ही जन्ममें ।

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार प्रजा-नृपके सुखी
निवसते गत वर्ष हुए कई,
यदि कहीं त्रुटि थी, वह थी यही
सदन-अंगन नन्दन-हीन था ।

सचिव-वृद्ध-प्रजाजनके जगी
हृदय-मध्य निरंतर लालसा,
‘ इन दृगों हम भी लख लें, प्रभो !
कापिलवस्तु-नृपाल-कुमारको । ’

अथ अचानक एक निशीथमें
अघटनीय महा घटना घटी,
बरसती वह सावनकी घटा
द्रुत फटी, तड़की, कड़की, हटी ।

बहु प्रकाश प्रकाशित हो गया,
भुवन-मंडल भासित हो गया,
उदधि-ऊर्मि विचालित हो उठी,
कलित-कंप हुई गिरि-श्रेणियाँ ।

सुमन मुन्दर सूर्य-मुखी ग्विले,
दिवसके सब लक्षण व्यक्त थे,
तुमुल-त्रोपवती गिरि-कंदरा
कर उठी सहसा यह त्रोपणा—

“ भगण सम्मुख हों, अनुकूल हों,
अज्ञान त्याग करें स्व-कठोरता,

सकल दान्त सं गिरि-मिथु भी,
प्रकट मार-सृगाधिप हो रहे ।

“ मनुज-वृन्द, सभी संहारें, उठें,
जग पड़े, ममज्ञें, मनमें गुनें,
भुवन-पालक, चालक विश्वके,
प्रकट वृद्ध तथागत हो रहे । ”

तद्दुपरान्त महान प्रदान्तिका
विशद राज्य हुआ नभ-भूमिपै,
कयुभ-गाहरसे वह घोषणा
निकल लीन हुई नभ-शून्यमें ।

घट गई घटना वह सच ही,
त्वरित ही नभ-दृश्य हुआ वही,
सघन घोर घटा द्रुत आ धिरी,
तम प्रगाढ़ हुआ अति शीघ्र ही ।

जग पड़े जन-यूथ प्रभातमें,
नव-समृद्धिमयी धरणी हुई,
घटित सो घटना गत रात्रिकी
निपट स्वप्नमयी सब हो गई ।

अकथनीय अलौकिकतामयी
गुरु-रहस्य-युता उदया दिशा,
सहित भाग्यवती युवती उषा
मुदित रागवती अब हो गई ।

जरा-भूषणके गित गायी
 मूक-केवनका जनि मय था,
 कनक-कुंदलमे परिधेयमें
 निहित थी जनि मंद-दिग्गता ।

विदम-वन्द-निकृति-कागिका
 सम अर्थवनी श्रुतिमें नगी,
 यदि कही वह हो सनावनी
 सदन हे चपला, कहना नहीं ।

सद्वि-शीतल मन्द गुण-धके
 विशद वासु बहा समीप था,
 प्रतिनिनादित कुशल-कृपामें
 यह हुआ कि मुझे कुल हो गया ।

कपिलवस्तु-धराधिप-धाममें
 चतुर चारण गायन गा उठे;
 सुन स्वकीय महा विरुदावली
 स-महिषी नृप जाग पड़े तभी ।

नृपतिने शिवका शुभ नाम ले
 कथित स्वप्न किया जब रात्रिका,
 विपुल विस्मय-संयुत भावसे
 पुलकसे महिषी कहने लगी—

“ सब लखा जितना प्रभुने लखा
 कुछ विशेष लखा उसको सुनो,
 समझके जिसको अब भी, प्रभो,
 शिर स-संभ्रम है प्रतिरोमका ।

“ तब विनीत हुई छाया-प्रभा
 अर्णवों नम-नाम मग्न मग्न,
 तब प्रसीत हुआ नमों, प्रभों,
 जब उठा मणि-दीपक एक था ।

“ जलज-मंदिन थी वह यमिनी,
 उदित था हुगुन यदि भासता,
 पर दशा उमड़ी ललके बड़ी
 हृदयमें मग कीतुककी कला ।

“ लग्न पक्षी निकटस्थित ऋक्ष-सी
 विशद कान्ति विशेष प्रभासवी,
 पर तुरन्त प्रकाश-समूह सी
 बड़ चला मुझको लख ध्यानसे ।

“ वह स-पुच्छ, न पुच्छल ऋक्ष था,
 सहित-ज्योति, न तारक-तुल्य था,
 कलित-कान्ति, न थी मणि-सी छटा,
 चढ़ चला मन और प्रसन्न हो ।

“ समुपभूत प्रभूत प्रभा हुई,
 बन चली पटकोणमयी छटा,
 लख उपस्थिति ज्यों धनराजकी
 कमल था गिरता सुर-लोकसे ।

“ जलज, अभ्रमुकी पद-घातसे
 निकल देव-नदी-जलसे यथा,
 गिर रहा द्रुत था मन शीतपै,
 ललित लाघवसे प्रतिभास हो ।

“ यदि विचार किया हम सबके,
 सुखद ही कष्ट स्वप्न न देगना,
 पर लगे यदि सुन्दर भावके,
 सर्वगत जीवन भी बनना, शिष्टे,

“ तदगके भयके सुख दिम्ब है,
 मुद्रित मानसके अनुभाव है,
 कष्ट बड़े, अति मिष्ट, पशु ये
 तुष्टि-धूम-मगान अन्तार है । ”

इस प्रकार प्रिया-दुग्ग पौष्टके
 द्रुत महीप चले निज धामसे;
 सकल नित्य-श्रिया कर शान्तिसे
 त्वरित राजसभा-गृहमें गये ।

गणक-वृन्द बुलाकर भूपने,
 कह अशेष कथा गत रात्रिकी,
 जरठ-ज्योतिष-पंडितराजसे
 फल सुना शुभ आगम स्वमका ।

“ भृगु-पराशरके मतसे, प्रभो,
 अमित उत्तम है फल स्वमका,
 सरस सुन्दर सावन-मास है,
 प्रकट अर्क हुआ अब कर्कका ।

“ सकल देव-नृदेव-प्रयत्नसे
 शक-कुलोदधिका शुभ चंद्रमा
 प्रकटता अब है, भरते हुए
 गगन-भूतलमें अभिरामता ।

“ त्वरित ही महिणी उदया दिशा
 अरुणको करती स-शरीर है,
 प्रकटते जिसके महि-ल्योगसे
 अन्न-घनान्ध तमी मिट जायगी ।

माञ्जिनी

“ अघ-अहि-उरगारी, द्रोह-दम्भापहारी,
 रति-पति-अरि भारी, सत्य-संकल्प-धारी,
 शम-दम-पथ-चारी, विश्व-संबोध-कारी,
 त्रिभुवन-भय-हारी, पुत्र होगा तुम्हारे । ”

१—भाग्योदय

वत्सलतिलका

वीते अनेक निशि-चासर शांभ्रतासे,
गर्भस्थ अर्भक लगा अत्र वृद्धि पाने,
कुक्षिस्थ जान निगनागमका प्रणेता,
माया प्रसन्न-वदना अति मोदनें थीं ।

ऐसी लगीं सहचरी सहचारनें थीं,
ऐसी पर्गीं नृपति-नन्दन-प्रेमनें थीं,
आये यथा भुवन-भास्करके बिना ही
छाईं उषा मुदित हो उदया दिशापै ।

आनन्दका उदधि, तुंग हिलोर लेता,
फैला नृपाल-सदनांगनमें लखाता,
दिव्याम्बरा, गुणवती, युवती नतांगी
गाने लगीं प्रसुदिता अरुण-प्रिया-सी ।

ले ढोल मंजुल मंजीर अभीर होके

ज्यों ज्यों स्व-कंठ-धनि-राग अलापती थीं,
हो मंत्र-मुग्ध कल-कंठ विहंग त्यों त्यों
आ दौड़ गोद उनके गिरने मुदा थे ।

ले ऋद्धि संग अपने सत्र सिद्धियाँ भी

गाना नृपाल-भवनांगन-मध्य गान्नीं
छन्नाम्बरा छविवती सुर-योपिताएँ
स्वर्गीय गीत सुस्त-संयुत गा रहीं थीं ।

प्रासादमें रजनि-वासर गान होता,

सर्वत्र नारि-नर मोद मना रहे थे,
चारों दिशा कपिलवस्तु-वसुन्धरामें
आनन्द-अंबुधि तरंगित हो रहा था ।

फैला सुवृत्त पुरसे सत्र राज्यमें यों

माया हुई प्रथम-गर्भवती प्रसन्ना,
आबाल-वृद्ध नर-नारि-समूह सारे
होते प्रसन्न-मन मग्न विनोदमें थे ।

बन्दी सभी मुदित हो यह सोचते थे,

‘ होगा कुमार यदि तो हम मुक्त होंगे,’
क्या जानते यह कभी वह अल्प-ध्री थे,
संसार-बन्दि-गृह-मुक्तक आ रहे हैं ।

हो-सी गई सकल गर्भवती धरित्री,

स्रोतस्विनी नवल-जीवन-वाहिनी-सी, .

दृष्टान्त हीन-पदा सदा विरसितान्ते

विगत-समीर-विश्रितता इव भासन्ती थी ।

ये भार-समूह-पल्लव-इव भीति-यति

सिंघ-सौ-समपत्नी-सुख-भी-न-सीमा,

दशा-सम्पत्ति-कत-भारी-सक-नाशियेसि

‘माया-सू-कथित-काल-कटोर-नाभा ।’

भास्कर-विश्रित

निद्राशील-सुनेत्र-मध्य-सुखदा-जो-स्वप्नकी-ज्योति-थी,

लौ-होके-यह-जा-लगी-हृदयकी-संचाहिका-शक्तिसे,

सन्नाही-उदरस्थ-भार-जबसे-संभार-होने-लगा,

पृथ्वी-भी-निज-अक्षर-अचल-हो-चंद्रम्यमाणा-हुई ।

वसन्ततिलका

ऐसे-विनोदमय-भाव-उठे-सभीके,

साध्वर्य-नारि-नर-कौतुकमें-हुए-यों,

धा-कौन-सा-निहित-भाव-प्रकाश-होता,

क्यों-व्योम-भूतल-अलौकिक-भासते-थे ?

भूके-अभूत-भव-दृश्य-विलोक-ऐसे

बोली-लवंगलतिका-प्रथना-सहेली,

“ सम्राज्ञि, शीघ्र सत्र दोहद पूर्ण होंगे,
 है सेविका यह सदा अनुजीविनी ही,
 श्रीशाक्य-वंश-अधिदेव प्रसन्न ही हैं,
 आनन्द-मंगल करें सत्र स्वामिनीका । ”

शार्दूलविक्रीडित

एकाकी जिस भाँति सूर्य हरता संसारका ध्वान्त है,
 जैसे सिंह-किशोर भी गहनमें स्वातन्त्र्यसे घूमता,
 वैसा ही गृह-वंश-दीप सुत भी होता अकेला सुधी,
 देता ताप न पात्रको, न गुणको, खोता नहीं स्नेह भी ।

वसन्ततिलका

होती रहीं सकल दोहद-प्रक्रियाएँ,
 देतीं सखी-जन रहीं सब भाँति सेवा;
 ज्यों-त्यों विकारमय अष्टम मास बीता,
 आया वसन्त अति सुन्दर दृश्य-धारी ।

थी पीतिमा सुभग आतपकी अनूठी,
 निर्धूलि व्योम अति सुन्दर सोहता था,
 ख-श्वासको मुदित मादकता मिली थी,
 पृथ्वी विमंडित बनी रमणीयतासे ।

गनी उठी सुदित मय-सुहृत्तमें ही,
 स्वयं अचानक उठी उनके अन्दरी,
 उधानमें गमन हो गंग के सरोवरी
 जाती कई दिनमें किन्तु गई नहीं थी ।

आरामका सुरभि-संयुत दृश्य देखा,
 प्रातःसमीर बहता अति मोहमें था,
 जाना कली-निकट आनन चूमता तो
 होने प्रफुल्ल अति-आयत पुष्प नाना ।

प्रत्यक्ष देख कलियों चिटकौं वहाँ जो,
 वे हो गई सुमन सौरभ-युक्त ऐसे,
 जैसे घटा गगनमें विरती घटोंमें,
 आता कि यौवन यथा सुकुमारियोंमें ।

है ताल-तुल्य चटकाहट फूलमें जो,
 तो तान-गान अलि-कोकिलके अन्ठे,
 जो हाव-भाव-मय मंजुल मंजरी हैं,
 तो नाचती नयनमें सुपमा नटी-सी ।

हैं कूकते पिक, अलोगण गान गाते,
 डोला समीर, लतिका बहु फूल फूलीं,
 हैं बोलते चटक, कीर अधीर गाते,
 अति विलोक ऋतु-नायकको वनोंमें ।

स्वामी सुगंधित समीर-प्रवाहका जो,
 जो चंचरीक-गणको अति मोद-दायी,
 जो कान्त है सुरभि-संगठिता कलिका,
 कंदर्पका सुहृद् चारु वसन्त आया ।

सारंगने, सुमनने, नभने, पिकाने,
 पुष्पौघमें, पवनमें, महिमें, हियेमें,
 गुंजारसे, सुरभिसे, छविसे, स्वरोसे,
 उद्भ्रान्ति, क्रान्ति, शुचिता, मृदुता प्रचारी ।

सौन्दर्यका विभव, वृद्धि हरीतिमाकी,
 तन्द्रा-विहीन सुपमा, ध्वनि कोकिलाकी,
 आनन्द-उत्स कल-कूजन पक्षियोंका,
 आरोग्यका विभव, सम्पति सद्यताकी,

उत्सर्गकी प्रकृति, ज्ञान नवीनताका,
 आश्चर्य-युक्त अवलोकन मुग्धताका,
 झोंका, तरंग, बहु-रंग विहंग नाना,
 सारे वसन्त-छवि-संयुत हो पधारे ।

देखी उपा उदित जो उदया दिशामें,
 रानी प्रसन्न-वदना इस भाँति बोली,
 “ कोई यहाँ चतुर हो तुममें सहेली
 तो दे वता त्वरित कारण लालिमाका । ”

बोली तदा प्रथम एक सरोरुहाक्षी,
 “ होता प्रतांत मुझको विधु-आनने, यों,
 आये दिवापति नहीं अब भी इसीसे
 रक्तानना बन रही उदया दिशा है । ”

बोली स-दर्प अपरा “ प्रतिभास होता
 संग्राम-क्षेत्र यह रक्त सुरासुरोंका,
 जो चन्द्र-हेतु अति क्रोधित हो लड़े हैं,
 की मारकाट अब भाग गये कहींको । ”

बोली नृत्तीय नमिना जनि थीरनामि,
 “ प्राची हुई दृग्मिना हि जननी मिजायी,
 जानी मिलीय, पति-धाम म्य-कन्यकाको
 मो अरके मरुत अष्ट्र वहा रती हि । ”

चीथी सगी नन लगी कहने, “ मुझे तो
 होता प्रनात नभकी उस देहल्ये
 एके नृमिह हरिने अपने करोंसे
 चीदा हिरण्य-वपु-वध स-रोप मानों । ”

भारी विचार कर भामिनि पाँचवीं भी
 बोली, “ शशाङ्क्यदने, लक्षिण उपाको,
 कैसी अनूप बहु-रंग-विरंग-वाली
 होती अहो ! प्रकट है बहुरूपिणी-सी । ”

बोली छठी हविवती युवती छवीली,
 “ प्राची रही हँस, महा यह पुंथली है,
 पीछे कहीं प्रथम प्रेमिकको छिपाया,
 स्नेही द्वितीय कर खींच बुला रही है । ”

तो सातवीं यह लगी कहने कि “ भूपै
 प्राची खड़ी वमन है करती लहूका
 हा ! कोकका, कमलका, विधुरा सतीका
 पी अन्न जो विकल घोर अजीर्णसे थी । ”

यों ही किया कथन कामिनि आठवींने,
 “ प्राची पिशाचिनि महा-भय-दायिनी है,
 हो दीर्घ-व्याहत-मुखी सुरसा-समाना
 संसारको निगलने यह आ रही है । ”

बोली लवंगलतिका यह चातुरीसे,
 "सम्राज्ञि, जो कि राक्षियाँ यह भापती है,
 सो सर्व सत्य, पर जो कुछ ध्यान आती,
 क्या मैं निवेदित करूँ वह धारणा भी ?

"आता मदीय मनमें सुन नाग्य ऐसे
 चन्द्रानने, कुछ कदा मुझसे न जाता,
 कुक्षिस्थ बाल-प्रति जो भवदीय इच्छा
 सो मूर्तिमान अनुराग बनी गड़ी है ।

"सम्राज्ञि, आज भवदीय समान शुभ्रा
 प्राची दिशा विलसती अति मोदमें है,
 है एक ही गुण नहीं, उभयत्र देखा,
 दोनों अनेक गुणमें सम भासते हैं ।

"सौन्दर्य-युक्त जिस भौंति विशाल प्राची,
 वैसा मनोज्ञ भवदीय ललाट भी है,
 जो लालिमा लख पड़ी नभमें अनूठी,
 तो आपके सकल अंग प्रभा-भरे हैं ।

"जो पिंगता विलसती वह व्योममें है,
 सो आपके वदनका प्रतिबिम्ब ही है,
 पुत्रोदरा वन हुई यदि आप ऐसी,
 तो है उपा-उदरमें रवि व्वान्त-हारी ।

"होते यथा उदित पूषणके महीका
 सर्वत्र दूर रहता तम है तमीका,
 वैसे त्वदीय सुतके अब जन्मते ही
 भूका अमंगल सभी शश-शुंग होगा ।

“सो ही कर्ण है परमेश्वर का प्रिय शिष्य,
 सो ही कर्ण भी शिव है मनुष्य का शिष्य,
 प्रथम सो शिव का शिष्य हुआ शीमं
 सो ही कर्ण भी शिव का शिष्य हुआ है ।

“मनो शरीर शक्ति शक्ति ही शक्ति,
 शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति ही,
 हो जाय शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति ही,
 शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति ।

शक्तिशक्तिशक्ति

“ऐसा अंक एक है, रजनिमें जो सुप्त होता नहीं,
 ऐसा कर्ण, अनूप चार-दिशिमें जो बन्द होता नहीं,
 है ऐसा वर हस्त, जो जगत्में निरक्षत होता नहीं,
 ऐसा है वह प्रेम, जो निरत हो आसक्त होता नहीं ।

“सो ही अंक हो गया अचल है श्रीशाक्य-साम्राज्यपै,
 सो ही कर्ण प्रपूर्ण वंश-यशके संगीनसे हो चुका,
 सो ही हस्त समस्त शाक्य नृपका कन्याण धारे हुए,
 सो ही प्रेम समृद्धि-धाम भवर्ताके कुक्षिमें बद्ध है ।”

वसन्ततिलका

यों ही परिक्रमण वे कर वाटिकाका
 सैरांघ्रि-संग जब शाक्य-नरेन्द्र-जाया

भूपालने, गणक शीघ्र बुला, कहा यों,
 “ दैवज्ञ, देव, तुम भूत-भविष्य-ज्ञाता,
 जन्माङ्ग खींच सुतका, फल तो बताओ,
 लो अन्न-वस्त्र-धन-भूषण दक्षिणामें ” ।

वेदी वनी परमपूत महा मनोज्ञा,
 थापा गया कलश दीप-समेत आगे,
 गौरी, गणेश, धरणी, ग्रह पूज बोले
 दैवज्ञ जन्म-फल दैव-विधातृका यों—

“ हे भूप, पुत्र भवदीय सुभाग्यशाली
 होगा महा प्रबल भूपति-चक्रवर्ती,
 ऐसे नरेश जगमें बहुधा न आते,
 आते कभी तदपि वर्ष सहस्र बीते ।

“ हैं सप्त-रत्न सुख-प्राप्य इन्हें महीमें,
 सर्वत्र पूज्य-पद-पंकज-युग्म होंगे,
 आकृष्टसार कर चुम्बकको हराके
 संसारका सकल पारस खींच लेंगे ।

“ आजानुवाहु अति सुन्दर शौर्यशाली
 होंगे अशेष बल-वैभव-कान्ति-वाले,
 होगा विशाल मन संश्रय भावुकोंका,
 अर्थार्थि-आर्त-जिज्ञासु-सुधी जनोंका ।

“ है चक्र-रत्न, उसका फल यों कहा है,
 जो अश्व, रत्न वह भी अति सौख्यकारी,
 उच्चैःश्रवा-सम कुलीन तुरंग पाके
 होगा सुपुत्र तव इन्द्र-समान भूपै ।

भूपालने, गणक शीघ्र बुला, कहा यों,
 “ दैवज्ञ, देव, तुम भूत-भविष्य-ज्ञाता,
 जन्माङ्क खींच सुतका, फल तो बताओ,
 लो अन्न-वस्त्र-धन-भूषण दक्षिणामें ” ।

वेदी बनी परमपूत महा मनोज्ञा,
 थापा गया कलश दीप-समेत आगे,
 गौरी, गणेश, धरणी, ग्रह पूज बोले
 दैवज्ञ जन्म-फल दैव-विधातृका यों—

“ हे भूप, पुत्र भवदीय सुभाग्यशाली
 होगा महा प्रबल भूपति-चक्रवर्ती,
 ऐसे नरेश जगमें बहुधा न आते,
 आते कभी तदपि वर्ष सहस्र बीते ।

“ हैं सप्त-रत्न सुख-प्राप्य इन्हें महीमें,
 सर्वत्र पूज्य-पद-पंकज-युग्म होंगे,
 आकृष्टसार कर चुम्बकको हराके
 संसारका सकल पारस खींच लेंगे ।

“ आजानुवाहु अति सुन्दर शौर्यशाली
 होंगे अशेष बल-धैभव-कान्ति-वाले,
 होगा विशाल मन संश्रय भावुकोंका,
 अर्थार्थि-आर्त-जिज्ञासु-सुधी जनोक्ता ।

“ है चक्र-रत्न, उसका फल यों कहा है,
 जो अश्व, रत्न वह भी अति सौख्यकारी,
 उच्चैःश्रवा-सम कुलीन तुरंग पाके
 होगा सुपुत्र तव इन्द्र-समान भूपै ।

“ मानस-मन्त्र, जपित अथवा शोचयात्वा,
 एकदिवसान् यत्क-नालकृमायका द्वै,
 नीलित, विद्वान्, मन्त्रन, मेघकोशं
 होतं भिरे मन्त्र-मन्त्रिण-मन्त्रिण्यकारि

“ शीघ्रं हि शुभ प्रिया-गुण्यका प्रकारी,
 भार्या मन्त्रागुण्यवती मुमुक्षुर्वा भित्तेर्वा,
 सौन्दर्यमे, चरितमे, यशमे त्रिमया,
 वार्गाश्चरी, जटथिजा, गिरिनदिर्ना-सी । ”

राजा हुये मुद्रित और प्रसन्न ऐसे
 दो दंड एकदफ ही लखते रहे वे,
 बोले तदा सचिवसे “ सब राज्यमें हों
 आनन्द, मंगल, कुतहल, खेल नाना । ”

ऐसे असंख्य प्रति-धाम सजे पताके
 श्यामायमान गृह-द्वार हुये पुरीके,
 दैवी समीर चल नन्दनसे पधारा,
 आकाश-पुष्प, सच हो, वरसे धरापै ।

धार्ई शशांकवदनी गजगामिनी भी,
 धार्ई कुरंग-सख-पंकज-खंजनाक्षी,
 आई निछावर लिये सुत देखनेको,
 आई सभी सुभग मंगल गीत गाती ।

थे द्वारपै मुद्रित मागध-मृत गाते,
 वर्चस्व शाक्य-नृप-वंशजका सुनाते,
 पाते अपार हय-हस्ति-हिरण्य-हीरे,
 हो हर्ष-युक्त ‘ जय-जीव ’ मना रहे थे ।

बोले महीप सुन सौख्यद विप्र-त्राणी,
 “हे हे तपोधन, महामति, भाग्य-ज्ञाता,
 अन्तर्दृग्ज्ज भवदीय विलोकते हैं
 भूकी चराचरमयी रचना सुरम्या ।

“हे विप्रवर्य्य, यह बालक आपहीका
 फूले, फले, सुख लहे, विहँसे, बड़ा हो,
 आशीष, हे सुमति, दो, ” कह भूपने यों,
 डाला प्रवीण-पदपै सुतको सुखी हो ।

ले गोदमें, चरण छूकर विप्र बोला
 “श्रीमान आप करते यह क्या, कहें तो,
 शून्य धन्य पाकर हुआ जिनके पदोंको,
 दुष्प्राप्य वे गिरिश-विष्णु-विरंचिको भी ।

“बत्तीस चिह्न जिनके सत्र मोक्ष-दाता,
 हैं अंग-अंगपर कोटि निशेश वोर,
 ऐसे महान पडभिज्ञ विशुद्ध ज्ञानी
 उत्पन्न होकर हुये सुत आपके हैं ।

“जो भीतिसे विषयके घन देख भागें
 वे हैं मराल मुनि-मानसके विहारी,
 होंगे स-भेद इनसे सरमें, महीमें,
 पीयूष-पाथ-सम धर्म-अधर्म दोनों ।

“उत्पन्न हैं कमल मानव-मानसोंका
 जो काम-कंठक-विहीन सदा रहेगा,
 नाना-प्रदेश-पुर-आगत भृंग-प्रेमी
 गन्धोपदेश सुख-धाम प्रकाम लेंगे ।

“ संदीप्त है सदनमे मणि-दीप-जागा,
जो शीत-श्योति-हृत्-कौमल-कान्तिशाली,
जो धाम हो मलिनता-अचकारितासे
होगी स्व-धर्म-प्रति भाव-प्रकाशवाली ।

ऐसा हुआ उदित सुन्दर चन्द्रमा है,
जो नारा-राहु-भय-मुक्त सुधा-प्रकाशी,
ऐसा हुआ उदित पूज्य ध्वान्त-हारी
‘ भूतो भविष्यति न वा इति मे विचारम् । ’

यों द्वार द्वार द्विजने करके प्रशंसा,
ले पाद-पद्म निज नस्तकधै चढ़ाया,
दे गोश्रमों जननिकी, उसको सुनाया,
“ सम्राज्ञि, धन्य भवती प्रथमा सती हैं ।

“ ऐसे सुसुख-सम सुख न पा सकें जो
जो युक्त है करुण कन्दन नारियोंका,
जैसे कहीं कनक-नागों विन्दोकरने ही
होगे अविचल दारों अन-हीनतासे ।

कौशेय, अंशुक तथा घनसार मोती
 कश्मीर-चीन-कृत शाल विशाल-शोभी,
 थे राज्यमें वणिक जो अति मुग्ध लाये
 आये सभी अगर-चंदन-वस्तु-वाही ।

यों ही सभी स्थपति-कारु स्व-वस्तु लेके
 आते वहाँ, नृपतिसे बहु द्रव्य पाते,
 गाते कुमार-गुण, भूपतिको सुनाते,
 जाते स्वकीय गृह, मोद महा मनाते ।

भूपालसे सकल सेवक-सेविकाएँ
 पाते सभी वसन-भूषण मुग्ध होते,
 प्रासाद-कार्य करते जिस लग्नतासे
 सो देख भाग्य सुर-वृन्द सराहते थे ।

ऐसा प्रमोद नर-नारि-समूहमें था
 ज्यों पुत्र-जन्म सत्रके घरमें हुआ हो,
 आनन्द-तौयनिधि जो उमड़ा महीपै
 तो मेरु-मंदर-समेत त्रिलोक इवा ।

इंद्रवज्रा

धन्या महींमें शक-राजधानी,
 माया स-शुद्धोद्यन धन्य-धन्या,
 धन्या कथा श्रीवन-जन्मकी जो
 धन्या वनाती कवि-कीर्तिको भी ।

३—उन्मेष

दुतविलंबित

तज समस्त अनादि-अनन्तता,
अमित उच्च उपाधि-विहीन हो,
भुवन-मोहन बाल-म्बरूपसे
प्रभु लसे जननी-कृत-क्रोडमें ।

मकरकेतनके तनकां छटा
लग्न पड़ी हिम-गांग जरीरपै,
जिस प्रकार घनान्त-पयोदके
पटलपै स्थित दामिनिकी प्रभा ।

पद्-सरोरुहकां वह लालिमा,
धुनिमती नखकां वह श्वेतता,
जननि-अंबक-त्रिम्बित नालिमा,
लख त्रिवेणि-प्रभा निगुनां ॥ २ ॥

मृग-सरोज-विनिन्दक नेत्र भी
 चपल खंजन-मीन-समान थे,
 निरखके मुखचन्द्र कुमारका
 अध-कशा-सम थी लट हो रही ।

क्षिगुलिया शुभ पिंगल रंगकी
 रजत-राशि-समान तनु-प्रभा,
 लख पड़ी अति अद्भुत-रूपिणी,
 रजनि-रंजन आतप-युक्त ज्यों ।

उछलना, गिरना फिर गोदमें,
 विहँसना, भरना किलकारियाँ,
 सहज-चंचल अंग कुमारके
 सुखद थे जननी-दृग-कंजको ।

पलंगसे पलनापर घालके
 जननि आनन-इन्दु विलोकती,
 तनुजको कर दौलित एकदा
 गुन-गुनाकर गायन गा उठी—

भुजंग-प्रयात

मुझे देख राजा, मुझे देख राजा,
 प्रफुल्लाब्ज-से नेत्रसे देख, राजा,
 मुदा मीन-सी आँखसे देख राजा,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा !

इसी कान्तिको नित्य देखा करूँ मैं,
 इसी रूपको लोचनोंमें भरूँ मैं,
 इसी ध्यानको चित्तमें ला धरूँ मैं,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा !

बना स्वर्णका उत्तरासंग तेरा,
 लसी हेमके कुंडलोंकी प्रभा है,
 तुझे प्राप्त सोना, न तू किन्तु सोना,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा !

नहीं हाथमें तू खिलौना लिये है,
 छिपे स्नेहका दण्ड ऊँचा किये है,
 यही प्रेम-सीमा, महाराज्य-सत्ता,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख राजा !

तुझे स्नेह दूँगी, तुझे प्यार दूँगी,
 तुझे मोद दूँगी, तुझे मान दूँगी,
 पढ़ाके-लिखाके तुझे ब्याह दूँगी,
 मुझे देख, राजा, मुझे देख राजा !

किसी भूपकी कन्यका तू वरेगा,
 किसी पाणिको पाणिमें तू धरेगा,
 इसी गोदको दोगुनी आ भरेगा,
 कहा मान, राजा, मुझे देख, राजा !

कभी आँखसे आँख तेरी लड़ेगी,
 कभी कंठमें व्याह-माला पड़ेगी,
 कभी चित्तकी ग्रन्थिको खोल कोई,
 तुझे स्थान देगी, मुझे मान, राजा !

प्रिया-भक्ति तेरे दृगोंमें लुकी है,
 महाशक्ति नन्हें करोंमें छिपी है,
 बनेगा कभी विरूपा भूप, वेदा,
 यही लेख, राजा, मुझे देख राजा !

बड़ा हो कभी तू किराटी बनेगा,
 कभी देह तू भूषणोंसे सजेगा,
 महाराज हो राज्य ऐसा करेगा,
 त्रिलोकी कहेगा, ' मुझे देख, राजा ! '

दुतविलंबित

विहँसते पलनेपर लालको
 लख, न जान सकी यह अम्बिका,
 गत-विकार निरामय जीविका
 सहज आनंद-युक्त स्वभाव है ।

निपट ही बट-अक्षय-पत्रके
 सदृश तल्प लसा रमणीय था,
 पद-अंगुष्ठ किये मुखमें यदा
 मुदित बालमुकुन्द दिखा पड़े ।

अधखुले कलि-निन्दक वक्त्रमें
 दशन-युग्म प्रकाशित यों हुआ,
 जिस प्रकार कला नवचन्द्रकी
 निकलती कल कैरव-कोषसे ।

कमलके सम आननमें, अहो !
 दशन दो मिलसे इस भौंतिसे,
 सुख-तारंगित मानसमें गया
 उच्छलके गुग बुन्द थिरा गये ।

सरस सस्मित आननमें लसी
 मधुरिमा मुसदा मुसकानकी,
 जननिके मुख-मंडल-ज्योममें
 उदित दो द्विजराज अनूप थे ।

हृदयसे अनुभूति-प्रकाशकी
 किरण दो रद हो मुगलसे कहीं,
 उभय-ज्योति हुई मिल एक-सी,
 जननि होकर अद्वयवादकी ।

रदप-अंबर-डंबर-मध्य दो
 दशन-तारक तारक-मंत्र थे,
 निरख ली जिसने उनकी प्रभा
 समझ सार गया वह 'शून्य'का ।

विहँसते उनके मुख-कंजमें
 नव-प्ररोहित दाडिम बीज थे,
 निरख कौतुक-संयुत अंबिका
 स्व-तन भी न सम्हाल सकी, अहो !

कमलकी छवि, कान्ति गुलावकी,
 कलित कुन्द-कली-अभिरामता,
 धनुष-बंकिमता, अलि-स्निग्धता,
 सब समूह हुई वदनाब्जमें ।

जगतकी सुयमा, अभिरामता,
 अनघता, शुचिता, सुककारिता—
 सकल-विद्य-राहस्य-मयी बनी
 सुरभि नन्दनके वदनाब्जकी ।

ललकना जननी-मुख देखके,
 शिक्षकना लख सेवक-सेविका,—
 सफल गौतमका बनता रहा
 सकल-बाल-चरित्र-प्रयत्न भी ।

समय बीत गया कुछ और भी
 सुखद बाल-क्रिया करते हुये,
 जब अचानक अंगनमें उन्हें
 जननिने घुटनों चलते लखा ।

सुख-तरंग उठी उर-सिन्धुमें,
 जननिके दृग निश्चल-से हुए,
 ललक दौड़ उठा, उरमें लगा,
 द्रत लगी सुतका मुख चूमने ।

फिर बिठा कुछ दूर कुमारको,
 ढिग बुला चटकाकर तालियाँ,
 कुछ दिखाकर रंग-विरंगका
 कर बड़ा करको गहने लगी ।

वृषति-नन्दनका हँसना तदा,
 खिसकना भरके किलकारियाँ,
 जननिके ढिग जाकर मोदमें
 उदरपै चढ़ना गह कंठको,

परम कौतुकसे पट खोलना,
 त्वरित एक उरोज उघाड़ना,
 भर कई चुन्नकी पय खींचना,—
 अति अलौकिकतामय दृश्य था !

अजिरमें घुटनों चलते हुए
 सुमुखमें कुल्ल वे जब डालते,
 चकित-खंजन-लोचन अंत्रिका
 त्वरित अंगुलि डाल निकालती ।

जननि अंशुक-अंत्र-कोणसे
 चरणका रज थी जब पोंछती,
 तब न थी वह किंचित जानती
 अजिन-अंत्र-अंजन है यही ।

इस प्रकार सुधी जब एकदा
 अजिरमें रत क्रीडनमें रहे,
 लख प्रसन्न हुई उदया दिशा
 हँस पड़ी विधु-पूर्णप्रकाशसे ।

धवल, गोल, पयोमय पात्र-सा,
 शकल-हीन कलाधर देखके,
 गुन उसे निज क्रीडन-वस्तु वे
 मचल सत्वर रोदनमें लगे ।

पद तथा कर उच्च उछालना,
 व्यथित-से वन भूपर लोटना,
 विलपना रजनीकरके लिए,
 अजिरमें सहसा मचने लगा ।

प्रथम, ब्राह्मकका हठ ही बड़ा,

फिर कहीं यदि राजकुमार हो,

समझ ले फिर न्या गृहमें हुआ,

भय स्वगन्ध-कलेवर-वृद्धिका ।

रुदन देग वदी सखियों सभी,

जननि वेगवती गतिसे चली,

ललक नन्दन ले निज गोदमें

सफल शान्ति-क्रिया करने लगी ।

चिबुक चूम उन्हें चुमफारना,

सिसकियों भरते लख वारना,

स्व-पटसे तनकी रज पोंछना—

जननि सर्व-प्रयत्न-वती बनी ।

मन न कार्पित पै उनका हुआ,

धुन लगी बस एक निशेशकी,

विफल यत्न हुये सबके सभी,

रुदन शान्त हुआ न कुमारका ।

कर विचार चली ललिता सखी,

परिनिवर्तित दर्पण ले हुई,

विमल बिम्ब दिखाकर इन्दुका

जननिकी करुणानिधि दृष्ट ली ।

नृपति-आलय-अंगनमें सदा

अभय जो चिड़ियाँ चुगतीं रहीं,

मुदित हो वह भी कुछ आ गई

निकट क्रांति-हेतु कुमारके ।

नगरमें जितने द्रुध विप्र थे,—
 अपर पंडित भी राक-राज्यके,—
 नृपति-आलयमें समेत थे
 उस महामहिनामय योगमें ।

सुभग सुन्दर तोरण द्वारपै,
 अजिर-मय्य वितान रचा गया,
 हवन-कुंड बनाकर की गई
 समिध-आज्य-श्रुवादिक-योजना ।

अमृत-पत्र तथा कुश-मुद्रिका
 अजिन, सारघ ले, दधि-दर्भ भी,
 गुरु-पुरोहित-पंडित-मंडली
 लग गई उपवीत-प्रबन्धमें ।

अति पवित्र वनी शुभ वेदिका,
 घट स-नीर, स-धान्य, स-दीप था,
 कर नवग्रह-यूजन रीतिसे
 द्विज लगे उपवीत-विधानमें ।

शार्दूलविश्रुद्धि

वैटे अक्षर-पीठपै जब मुदा सिद्धार्थ सिद्धाप्रणी ।
 विप्रोंने पढ़ वेद-मंत्र रचना प्रारम्भकी यज्ञकी ।
 भूयिष्ठा लख हव्य-द्रव्य-जनिता शुद्धाम्नि-उत्तेजना
 थी अध्यात्म-प्रकाश-लोक-विभवा श्री वामनाभूत-सी ।

नगरमें जितने दुःख विपद् भे,—
अपर पंडित भी शक-राज्यके,—
चपति-आलयमें समवेत थे
उस महागहिमामय योगमें ।

सुभग सुन्दर तोरण द्वारपै,
अजिर-मव्य वितान रचा गया,
हवन-कुंड बनाकर की गई
समिध-आज्य-श्रुवादिक-योजना ।

अमृत-पत्र तथा कुश-मुद्रिका
अजिन, सारव ले, दधि-दर्भ भां,
गुरु-पुरोहित-पंडित-मंडली
लग गई उपवीत-प्रबन्धमें ।

अति पवित्र वनी शुभ वेदिका,
घट स-नीर, स-धान्य, स-दीप था,
कर नवप्रह-यूजन रीतिसे
द्विज लगे उपवीत-विधानमें ।

शार्दूलविक्रीडित

वैठे अक्षर-पीठपै जब मुदा सिद्धार्थ सिद्धाप्रणा ।
विप्रोंने पढ़ वेद-मंत्र रचना प्रारम्भकी यहकी ।
भूयिष्ठा लख हव्य-द्रव्य-जनिता शुद्धाग्नि-उत्तेजना
थी अध्यात्म-प्रकाश-लोक-विभवा श्री वामनाभूत-

फिर कुमार गये गुरु-गेहको,
 विविध-ज्ञान-उपार्जनके लिए,
 वन गये गुरु भी इस योगसे
 सकल-पंडित-मंडल-अग्रणी ।

उदरमें जिसके सब सृष्टिका
 निहित ज्ञान-निधान महान है,
 समयके अवकाशकके लिए
 समयका अवकाश न चाहिये ।

लिपि लिखी गुरुने शुभ मागधी,
 लिख कहा, “सुत, ठीक लिखो इसे,”
 लिख चले लिपियाँ वह विश्वकी
 निरख श्रीगुरुं विस्मित हो गये ।

खश, पिशाच, हिमालय, अंगकी,
 मग, खरोष्ट्र, तुरुष्क, कलिंगकी,
 मलय, मालव, उत्कल, बंगकी
 कुँवरने लिपियाँ लिख दीं सभी ।

विरच अंबरको जिसने सभी
 गगनकी गिन लीं सब तारिका,
 गुण असंख्य सदा जिसमें भरे,
 लघु सभी गणना उसके लिए ।

गुरु महामति गौतम-विज्ञता
 चकित-विस्मित थे अवलोकके,
 जब प्रयोग चला न द्वितीय तो
 चरणमें लघु बालक-से गिरे ।

अग्नि-प्रहार, प्रचालन अश्वका,
धनुम-कर्षण, वर्षण बाणका ।

नयन-मीलनमें वह हो गये
बुझाल वेधनमें चल लक्ष्यके;
सकल शर-क्रिया उनको, अहो !
अवगता चलते चलते हुई ।

फलक-कुन्त-त्रिशूल-गदा-क्रिया
नृपति-नंदनको जब आ गई,
तब परीक्षण-हेतु कुमारको
नृप-समीप मुदा गुरु ले गये ।

नृपतिने सुतको अति प्यारसे
ढिग बिठा दिखला तरु सामने,
यह कहा, “ उसकी लघु डालपै
विहग है वह जो दिखला रहा

“ वध करो उसका शर एकसे
कुशलता, तब, स्वीकृत हो मुझे । ”

सुन कुमार लगे कहने, “ प्रभो,
जनक आप मदीय सु-भूष्य हैं,

“ विनय है इतनी, यदि ध्यान दें,
सदय भूरि कृपा खगपै करें;
अभय-दान, सुना, नृप-धर्म है,
विहग आश्रित है भवदीय ही,

जब कभी हय-चादनमें हुई
 रभस होइ सवार-समूहसे
 लख पड़ा क्षणमें द्रुत दौड़ता
 कुंवरका हय अग्रग नृधका ।

लख कुरंग तुरंगम डालते,
 सु-रुचि थी अनुधावन-मात्रकी,
 लख धके मृगको हय रोकते,
 सदनको फिरते वह नित्य यों ।

गहनमें अति-धावनसे यदा
 निरखते श्रम-खिन्न तुरंगको,
 त्वरित ही उसको ठहरा तदा
 थपक देकर थे चुमकारते ।

रभस धावित देख कुरंगको,
 अध-खिंचा धनु लेकर हाथमें,
 तुरंग रोक कभी कुछ सोचते,
 हनन थे करते न वराकका ।

जिस प्रकार प्ररोहित बीजसे
 प्रथम अंकुर है लघु फूटता,
 फिर वही बढ़ता युग-पत्र हो
 अयुत-पत्र-वती छवि धारता ।

उस प्रकार कुमार बड़े हुए
 परम आनंद-दायक भूपको,
 उलहती वयके अनुसार हां
 हृदयमें करुणा लहरा उठी ।

शादृक्कविक्रीडित

यों ही राजकुमारको सरसता, आनन्द-संमोहिता,
 श्री, सौभाग्य, प्रसन्नता, सुभगता संग्राह थी विद्वन्ने;
 सोचा किन्तु न भूल एक क्षण भी संसार क्या भेद है,
 वाया, शोक, विशाद, कष्ट, उनको थे पुष्प आकाशके।

राजाके संग चाटुकार यदि हों तो कान ही फूँक दें,
 ज्वाला हो यदि नेत्रमें महिमकी, तो आँख जाती रहे,
 सीमा-हीन स-कान हो हृदय, तो क्या देर है नाशमें,
 है साम्राज्य विनाश-हेतु उसका जो हीन-कर्तव्य हो।

ले संस्कार समुच्च भूप जगमें है जन्म लेता यदा
 होता है अकलंक उच्च बुलका कल्याणकारी शशी,
 शिक्षा हो यदि प्राप्त बालपनसे साम्राज्य-संवानकी
 तो होता वह विक्रमी, अति बली, योद्धा, प्रतापी, तपी।

होता भूप मनुष्य ही, इसलिए आवद्ध है भाग्यसे,
 होती मुद्रित मौलियै नृपतिके संसार-शातोप्यता,
 पाता भूमृत शान्ति त्याग-पथसे, आक्रान्त हो क्रान्तिसे
 जाता काननको सुधी जरठ हो या हीन हो राज्यसे।

४—अनुकम्पा

शित्तरिणी

उपा लोका रम्या दिवस-मुखमें राग भरके
हँसी ज्यों ही भूपै प्रकट नभमें भास्कर हुआ,
विहंगोंकी बोली श्रवण-सुखदायी सुन पड़ी,
चले सारे-साथी-साहित तब सिद्धार्थ वनको ।

वसन्त

निदाघका पूर्व-पदी प्रभात था,
अनुपगत थी सुखदा नर्मामें,
हुई समालोकमयी वसुन्धरा,
महा पिशांग प्रथमा दिशा लसी ।

सुगंध-शेषा गति वायुकी हुई,
सितांग-शेषा लख चन्द्रिका पड़ी,

मुहूर्तमें ही अरुणासणी चला
 स-गुह-बन्धूक-प्रभा विदारता,
 उठा महा रक्तिम कीर-जुंड-सा,
 सु-दिग्बधू-कंकण-सा तमितहा ।

स-मोद सिद्धार्थकुमार अद्वपै
 सवार हो, ले सँग देवदत्तको
 मृगव्यके व्याज चले अरण्यको
 दिवाचरोकी पशु-वृत्ति देखने ।

वनी हुई थी पुर-राजमार्गमें
 अनूप शोभामयि पण्य-व्रीथिका,
 प्रयाण प्यारे नृपके कुमारका
 विलोकती थी जनता समुत्सुका ।

अनूप सिद्धार्थ-स्वरूप देखके
 प्रजा हुई हर्षित रोम-रोम यों,
 विंरी घटा ज्यों घनकी विलोकके
 कदम्बके पादप-पुंज झलते ।

नरेश बैठे अपने निवेशपै
 विलोकते थे चलना स्व-पुत्रका,
 अदृष्ट अन्तःपुरके गवाक्षसे
 निहारती थी महिपी कुमारको ।

कभी घुमाते वह सिन्धुवार थे,
 कभी चलाते कुछ धैर्यसे उसे,
 कभी दिखा चावुक थे उछालते,
 कभी नचाते बहु एड़ दे उसे ।

प्लवंगका वलित डाल-डालपै,
 दिहंगका कृजन पात-पातपै,
 मिल्दिन्दका गुंजन फल-फलपै,
 विलोक आनन्द कुमारको हुआ ।

अरण्यके दुर्गम मार्गसे यदा
 बक्षी छयाखड़ कुमार-मंडली,
 इतस्ततः खेचर भागने लगे,
 लया तथा तीतर झाड़में छिपे ।

मयूर बोले, अहि भूमिमें धँसे,
 उड़े रसालस्थित चाप वेगसे,
 कलिंग भागे, कुररी छिपी कहीं,
 विहाय कासार उड़े बलाक भी ।

लखी यदा पादप-हीन आयता
 वसुंधरा कानन-मव्य-वर्तिनी,
 तरंगिणी थी बहती प्रवेगसे
 सुवर्णुलाकार-प्रकारसे जहाँ ।

समूह एकत्रिं हों गया वही,
 सभी मड़ने क्षण-एक शान्ति ली,
 तदा समाजोजन-इन-चिन वे
 सुरभ्रका वान विचारने लगे ।

तुरन्त ही एक मरुत-पत्तिकी
 ललाम लेखा जब व्योममें पड़ी,
 विलोक वर्षागम जे समीप हो
 प्रवेगसे मानन-ओरको चली ।

मनोरमा सुन्दर अर्ध-वृत्त-सी,
 समुज्ज्वला मौक्तिक-दाम-सी लसी,
 निसर्गकी स-स्मित दन्त-पंक्ति-सी
 चली महा मंजु मराल-मंडली ।

उदग्र-प्रीवा रजनीश-रश्मि-सी,
 स-धैर्य-उत्तोलित पुच्छ-पक्ष थी,
 सटे हुए थे पद-युग्म पेटसे,
 स-हंस-हंसी उड़ती स-हास थी ।

मराल-माला लख देवदत्तकी
 प्रवृत्ति हिंसामय शीत्र हो गई,
 दुरन्त नाराच कढ़ा निपंगसे
 चढ़ा स-टंकार शरास शीत्र ही ।

स-शब्द नाराच चला भुजङ्ग-सा,
 अमोघ छूटा वह रामवाण-सा,
 लगा महाकाल-त्रिशूल-सा जभी
 गिरा स-कृंकार मराल भूमिपै ।

कुमार दौड़े सुन हंसकी व्यथा,
 उगा दया-भाव दया-निधानके,
 निकाल नाराच तुरन्त पक्षसे,
 लगा गलेसे चुमकारने लगे ।

पुरा यथा धूलि विहाय रामने
 स-हर्ष दी सद्गति वृद्ध गृद्धको,
 तथैव सिद्धार्थकुमार हंसपै
 हुए दयाशील महान प्रीतिसे ।

त्रिलोक-नग्रा जगदंक-हेतुकी

महाभुजा, कल्प-लता-प्रगृहिणी,
प्रगाढ़ छाया करती अधीनपै
समाप्त होता भव-ताप आप ही ।

कुमारके अंक मराल देवके

लगा उसे सेवक एक मोंगने,
कहा, “ हुआ खेचर देवदत्तका
अतः कृपानाथ, मुझे प्रदान हो ।

“ स्व-पक्ष-नामी जब था, स्वतन्त्र था,
न था किसीका अधिकार हंसपै,
विहंग हो आहत देवदत्तसे
हुआ उन्हींका, कृपया प्रदान हो । ”

परन्तु सिद्धार्थ मराल-पृष्ठपै

फिरा फिरा हाथ सुधार पक्ष भी,
सुवाक्य बोले, “ कह, स्वीय स्वामिसे
शकुन्त दूँगा न कदापि मैं उसे ।

“ न स्वत्व है भक्षकका मृगव्यपै,
मरालका रक्षक मैं स्वतन्त्र हूँ,
अतः न दूँगा खग देवदत्तको
कहो कि आखेट करे वनान्तमें । ”

तुरन्त लौटा जन, देवदत्तसे

कहा “ अनुज्ञा यह है कुमारकी
कि आप जायें कृपया वनान्तको
करें प्रतीक्षा न कदापि देवकी । ”

मताल-पीड़ा-अतिरिक्त दृःख वे
 न जानते भूतलमें वादापि थे,
 परन्तु ध्यानस्थ विराज गूर्ध्र
 विचारनें विस्त-व्यथा-कथा लगे ।

अभी अभी हृदय विलोक ग्रामका
 यहाँ पधारे तब चित्त मुग्ध था,
 लखा जमी जीव-व्यथा-प्रकार तो
 बृथा लगा कंटक-पूर्ण पुष्प भी ।

कुमारके सम्मुख घोर घाममें
 कितान प्रस्वेद-प्रपूर्ण-देह था,
 चला चला बैल महान धैर्यसे
 धमी उठाता सुख-हेतु दुःख था ।

समस्त प्रस्वेद-प्रपूर्ण गात्रपै
 जमी हुई पुष्कलरेणु-राशि थी,
 परन्तु तो भी वह बैल पीटता
 चला रहा था निज नाव रेतमें ।

निहारते ही अति तीव्र दृष्टिसे
 त्रितापमे तापित विश्वको लखा,
 निमग्न देखे जन राग-द्वेषमें,
 विपन्न देखे भव-जन्य दुःखसे ।

पतंग तो दादुर-चर्व्यमाण है,
 भुजंगसे भेक निर्गीर्यमाण है,
 द्विजिह भी खाद्य हुआ मयूरका,
 शिखी बना लुब्धक-भोज्य-वस्तु ही ।

मार्गदर्शिका

जो ही थे करते विचार मनमें सिद्धार्थ बैठे हुए,
 नृप संसृतिके हुए निरत यों कल्याणके ध्यानमें,
 कैसी मर्मर-मूर्ति देह उनको पद्मासनस्था लसी,
 हो साक्षात् विराजमान महिषे मानो तुरीया दशा ।

जीवोंमें उनदी अपार कदना, चिन्ता उठी चित्तमें,
 यों ध्यानस्थ हुए कि भान उनको भूला कई यामलीं,
 ऊँचा भाव उठा विभिन्न करके सीमा अहंकारकी,
 देखा चार प्रकारका प्रथम जो सोपान है धर्मका ।

दुतविलम्बित

गगनमें रवि निश्चल हो गया,
 पवन रुद्ध हुआ कुछ कालको,
 फिर सवेग निवर्तित हो गई
 प्रथम-मानस-वृत्ति कुमारकी ।

उधरसे निकले कुछ देवता,
 सज विमान विनोद-विहारको,
 उड़ सवेग रहे वह थे, अहो !
 विटपपं सहसा रुक ही गये ।

चकित होकर वे सब खेदमें
 तनुरुहाञ्जित, तर्क-दृढ़ी बने,
 लख पड़े उनको तरुके तले
 प्रसु अमानव मानव-रूपमें ।

गगनसे उतरे तज गानको,
 दूत प्रणाम किया अधिदेनको,
 फिर नले निज निधित देशको,
 प्रभु-कथा कहते-मुनते हुए ।

“ सुभग सुन्दर भारत भन्य है,
 न भरणी इसके सम अन्य है,
 जगत-ताप निनाशनके लिए
 प्रभु यही अनतीर्ण हुए सदा ।

“ तृपित संसृति थी भव-तापसे,
 अमृतका मृदु मानस पा गई,
 तिमिरसे अवरोधित धाममें
 जगमगाकर दीपक आ गया ।

“ यह वही जग-दीपक है जिसे
 अयुत भानु-कृशानु न पा सके,
 छविमयी अपनी शुभ ज्योतिसे
 जगतको चमकाकर जायगा ।

“ तिमिरमें प्रतिभासित सर्वदा
 यह वही जगका मणि-दीप है,
 मल-विहीन, सु-शीतल ज्योतिसे
 हृदयको चमकाकर जायगा ।

“ यह वही शुभ तारक है कि जो
 गगनमें उगता कुछ देरसे
 पर स्वभाव-प्रसिद्ध अचूक है
 पथ-प्रदर्शक नाविक-वृन्दको ।

यह अर्धेडित पूर्ण निशेरा है,
यह प्रताप-प्रकाश दिनेश है ।
मृदु निशेरा, प्रचंड दिनेश है,
यह निशेरा-दिनेश-अशेष है ।

शार्दूलविनीडित

दोनों लोचन-मध्य दृष्टि अचला, पद्मासनस्था दशा,
नासाके स्वर-साम्यसे सहज ही आधार दे प्राणको,
अन्तर्भूत प्रभूत ज्योति विमुकी साकार हो आ गई,
शून्याम्भोधि-निमग्न बुद्ध जगको सद्धर्म-संवोध दें ।

५—अवरोध

मन्दाक्रान्ता

जैसे जैसे सुत बढ़ चला, भूपने मोद माना,
आज्ञा की यों “ नव गृह वनें तीन आनन्ददायी,
मेरा प्यारा तनय अब तो प्राप्त कैशोर्यको है,
इच्छा प्यारे तनुजवरको सौख्यके दानकी है । ”

राजाज्ञासे स्थपति-गणने हर्म्य ऐसे बनाये,
वर्षामें जो सुखद अति थे शीतमें, ग्रीष्ममें भी,
नीले, पीले, सित सुमनके वृक्ष चारों दिशामें
शोभावाले प्रचुर विटपी भी लगाये गये थे ।

प्रासादोंमें दिवम कटने शान्त मिद्वार्थके थे,
खाने, पीते, शयन करते, मोद पाते महा थे,
आ ही जाती हृदय-तलपै किन्तु चिन्ता कभी थी,
छा जाती उ्यों धवळ जळपै श्यामळा मेव-माळा ।

गम्नाविष्णु

- गजा दृष्ट चक्षित जान कुमार-चिन्ता,
 आमात्यसे यह लगे कहने दुग्धी हो,
 “क्या बात है, सचिव, भाग्य आपको भी,
 जो थे कर्मा कर गये गणकाप्रणी वे !
- “या तो समस्त-अरि-मंडल-भग्न-कारी
 होगा सुपुत्र यह शासक-चक्रवर्ती,
 या तो पुनः, कठिन भिक्षुक-वृत्ति-धारी
 होगा,—न जान पड़ता यह क्या करेगा !
- “ऐसी प्रवृत्ति इसका कुछ ही दिनोंसे
 हूँ जानता कि बढ़ती अधिकाधिका है,
 कोई उपाय इसका मुझको बताओ,
 चिन्ता-विहीन मन राजकुमारका हो ।”
- आमात्य बद्ध-कर हो इस भाँति बोला,
 “संभोग ही सफल ओषधि योगकी है,
 सिद्धार्थके सरल मानसपै विहा दो,
 सम्पुष्ट जाल-सम विभ्रम नागियोंका ।
- “मानी गई मदनकी प्रभुता अजेया
 कान्ता-कटाक्ष-विशिखाहत चित्त-द्वारा,
 है कौन जीव जगमे बलमे बंच जो
 अकृष्ट-चाप रति-नायकके शरोसे।
- “संसारमे बहुत है कृत-कृत्य धन्वी
 जो एक वस्तु भगमे करते द्विधा हैं,
 धानुष्क शक्तिधर है स्मर ही अकेला,
 जो एकता विरचता युग वन्दुओंमें ।

“ गो-बाल, भूप, वन उद्यत भागता जो,
 हैं बाँधते जन उसे दृढ़ रज्जुसे तो,
 कान्तार-मध्य तत्र लौं मृग कूदता है,
 आपुंख-मग्न शर सो जत्र लौं न खाता ।

“ प्रस्ताव है कि यदि उत्सव एक होवे,
 एकत्र काम-वनमें सुकुमारियाँ हों,
 सिद्धार्थके कमल-कोमल हस्त-द्वारा
 होवें पुरस्कृत, तदा निज गेह जावें ।

“ सिद्धार्थ रूप, गुण, विभ्रम नारियोंके
 देखें यदा सुरति-भाव-प्रदत्त-चेता,
 विश्वस्त एक चतुरा रमणी विलोके,
 हैं लक्ष्य आर्य वनते किसके शरोंके ।

“ कोई अवश्य उनका मन खींच लेगी,
 होगी वहाँ परम रूपवती कुमारी,
 सिद्धार्थको प्रणय-गर्भ-गिरा सुनाके
 जो स्वर्ग्य-सौख्य-मय लोचनसे लखेगी ।

“ सीमा वही प्रवल रूपवती बनेगी,
 सिद्धार्थका तरल मानस बाँधनेकी,
 संपुष्पिता भुज-लता तरुणीजनोंकी
 है पाशमें तरुण-पट्टपद बाँध लेती । ”

वार्ते सुनी सचिवकी नृपने कहा यों,
 “ हे धुर्य, शीघ्र पुरमें यह वृत्त फैले,
 हो ज्ञात ज्ञाति-जनको, सब क्षत्रियोंको,
 सिद्धार्थ-हेतु यह उत्सव हो रहा है ।

“ जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म-सुन्दर सुन्दरी हो
 होगी कदात्र मम राजकुमारकी सो,
 चारों दिशा प्रकट हो यह घोषणा भी—
 होगा वसन्तापर उत्सव सौख्यदायी । ”

मन्दारान्ता

आज्ञा फैली शक-नृपतिकी देशमें शीघ्रतासे
 होनेवाला परिणय महा मंजु सिद्धार्थका है,
 आया व्यो ही दिवस मधुकी पुण्यदा पंचमीका,
 वाला आई सुभग गुणमें, रूपमें, शीलमें भी ।

द्रुतविलिम्बित

चल पड़ीं सुमुखी सुकुमारियाँ
 सुभग अन्वर भूषण साजके,
 उड़ चली उनके अँग-रागकी
 मदन-मादन मंजु सुगन्ध भी ।

सुमन-गुच्छमयी कवरी लसी,
 सरस चिक्कण कुन्तल-न्यास था,
 रचित-रोचन भाल-विशालका
 अति अलौकिकतामय रंग था ।

नयन-मोहन अंजन-हीन भी
 कमल-पत्र-विनिन्दक नेत्र थे,
 कलित कुंडल मंजुल कर्णमें
 चपल चालित थे सुख दे रहे ।

उधर थीं धनि मंजुल मुन्दरी
 सकल मन-समागन-धौवना,
 भृगुद्वारी, सरसीरुद्र-धौवना,
 नयनवा नदन-सुति-संयुता ।

इधर थे अति दान्त स्वभावके
 कपिलयस्तु-धराधिप-लाइले,
 लसित था जिनके वदनावज्रपै
 अति अलौकिक भाव विरागका

समद-नारण-विभ्रम-गामिनी
 सत्र समुत्सुक थीं उपहारको
 निकट आकर शाक्य-कुमारके
 दग झुका कुछ लेकर लौटती ।

सुगम थी गति मन्द मराल-सी,
 नयनकी नति थी सुखदायिनी,
 मुसकराकर हाथ पसारती,
 सरस हो गंहती उपहार थीं ।

छविवती गुण-धाम कुमारियाँ
 परम मुग्ध पुरस्कृत हो चुकीं,
 रह गई वस एक यशोधरा,
 वैंट चुका सत्रको उपहार था ।

पहुँचके वह पास कुमारके
 विपुल-विभ्रम-युक्त खड़ी हुई,
 दग मिलाकर, चंचल भौहसे
 'कुछ मिले मुझको' कहती हुई ।

कुटिल भ्रू, युग लोचन व्रंक थे,
 पलकं थे उसके नत शीलसे,
 नयन-कोण विलास-विकास थे
 कमल-युक्त विभाकर-भाससे ।

कुटिल भौंह शरासन-सी लसी,
 वन गये युग लोचन व्याध-से,
 मन कुरंग-समान कुमारका
 क्षत हुआ शर-तुल्य कटाक्षसे ।

अति अलौकिक सुन्दरतामयी
 निरख उज्ज्वल आननकी प्रभा,
 तरल मानस शाक्य-कुमारका
 द्रुत अतीव तरंगित हो उठा ।

नवल अंकुर भी अनुरागके
 द्रुत उठे तनपै मिस रोमके,
 जव अपांग-निपातन-पंडिता
 वह हुई समुपस्थित सामने ।

शरद-चन्द्र-विनिन्दक वक्त्रको
 निरख कंज हुए छवि-हीन थे,
 लख पड़ी उस काल यशोधरा
 सहित-मंजु विलास हरिप्रिया ।

दृग विलोक कुरंग सलज्ज थे,
 चकित खंजन स-भ्रम मीन थे,
 तनु-प्रभा तप-भूति-समुज्ज्वला
 रघु वनी सुखदा मयना-मुता ।

गमनमें नवना कर्णियों-समा,
 नयनसे रचिग हरिणी-समा,
 शशि-कला-वदना रजनी-समा,
 वह चर्ची प्रमदा तरुणी-समा

छविमयी अति धन्य यशोधरा,
 विशिखसे जिसने स्व-कटाक्षके
 श्रवणलीं भुवका धनु तानके
 क्षत किया मृग-राज-कुमारको ।

वदन-सोम, सुवाक्य सुधा-भरे,
 अगदधाम विशाल कटाक्ष धे,
 जगतमें अति धन्य यशोधरा,
 अमृत है जिसकी सुखदा कथा ।

विधि-विधान कहाँ जड़ता-भरा;
 वह महा चतुरा युवती कहाँ !
 विदित भेद हुआ; शिव-भाँतिसे
 मदनने रति-रूप बना लिया ।

सब गला विधिने शशिकी कला
 अमृतका उसमें फिर योग दे,
 अगद क्या विरची बहु यत्नसे:
 विरति-खेद-प्रसक्त कुमारकी ?

रणित भूपणसे जिसने किये
 बहु हताहत यूथ मरालके,
 वश किया उसने शक-नाथको
 शिथिल-मुग्ध-मृगेक्षणसे, अहो !

कमल थे, मृग थे किं सु-नेत्र थे,
 विहग थे, शिव थे कि उरोज थे,
 मुकुर था, विधु था कि मुखाब्ज था,
 तडित थी, रति थी कि यशोधरा ।

कुसुम जो अलिसे न छुआ हुआ,
 सुभग मौक्तिक जो न विंधा हुआ,
 हृदय जो अवलौं न दिया हुआ,
 वह विलोक विमुग्ध कुमार थे ।

कणन कंकणका कमनीय था,
 सुखद था अतिवर्षण कान्तिका,
 छविवती वह साज-समाज थी
 कुंसुम-शायकके अभिपेककी ।

अधरपै स्थित ईपत हास था,
 दृग जुड़े दृगसे शकनाथके,
 त्वरित ले निज हार कुमारने
 उस सुधा-निधिको पहना दिया ।

वैट चुका उपहार समस्त था,
 रह गया कुछ शेष न पास भी,
 पुलक-संयुत राजकुमारने
 हृदय दान किया सँग हारके ।

नयन दो वन चार गये जभी
 प्रणय एकर हुआ युग-चित्तका,
 तत्र पुरातन जन्म-कथा उन्हें
 अवगता क्षणमें वह हो गई—

जब कुमार रहे मुग गोपकं
 मुमुक्षु थी यह सुन्दर गोपिका,
 विचरणे यमुना-उपशूलमें
 रहित-पाप अमाप प्रमोदसे ।

सँग लिये सुव्यदायक कन्यका
 विरचते बहू खेल स-मोद थे,
 सकल अन्य कुमार-कुमारिका
 विहरते उनके सँगमें सुखी ।

दिवस एक, रचा जब खेल था
 परम कौतुक-कारक चित्तको,
 नयन-मीलनकी कर योजना
 सब समूह हुई सुकुमारियों ।

सरस विभ्रमसे जब एकके
 बन-जुही रच केश-कलापमें,
 अपरके शिरपै सुखसे रचा
 मुकुट मंजुल मंजु मयूरका ।

सुभग मेचक-कंठ विहंगके
 असित पक्ष मनोहर रंगके
 जब किसी वनिता छविधामके
 श्रवणमें रखके विहँसा दिया ।

कदलिके आनि आयल पत्र-से
 नयन मीलित थे सबके किये,
 जब चले बन-वृक्ष टटोलते,
 मिल गई यह गोप-सुता उन्हें ।

पाला है कर काट-छाँट उसको पोषा उसी प्रेमने
 शाखा छिल हुई हिली जड़ यदा, काटा, इकट्ठा किया,
 आटा-सा करके रखा अनिलपै ऐसा पकाया उसे
 भोक्ता तुष्ट हुआ, बुझी न तब भी दीता क्षुधा प्रेमकी ।

इच्छा, अर्चन, काम, क्लेश, करुणा, गंभीरता, धीरता,
 बुद्धानन्द, विचार और प्रभुता, कर्तव्यता, नम्रता,
 स्नेहाचार, पवित्रता, सुखदता, संतुष्टता, योग्यता—
 प्रेमीके सब प्रश्न-पत्र, इनमें होती परीक्षा सदा ।

“कन्याका मैं परिणय करूँ किन्तु है एक चिन्ता,
गोपाके हैं अपर प्रणयी जो उसे चाहते हैं,
योद्धा भारी समर-विजयी नागदत्ताख्य धन्वी,
वर्चस्वी है अमर सुत भी मत्त-मात्तंग-नामी ।

“सेनानी है सबल अति ही साहसी नन्दराजा,
वाँका धन्वी बलि-तनय भी चाहता व्याहना है,
कान्ताकारा कुमुद-कलिका-कोमला कन्यकाका
पावेगा सो कर-कमल जो हंस होगा द्विजोंमें ।

“सोचा मैंने शुभ मख रचूँ एक सप्ताह बीते,
राजा भेजें स-मुद अपने पुत्र सिद्धार्थको भी,
आवें सारे नृपति-सुत जो व्याहना चाहते हों,
वाणोंमें हों सफल, असिमें योग्यता-प्राप्त जो हों ।”

सारी बातें शक-नृपतिसे दूतने जा सुनाई,
राजाने भी वरण-मखमें पुत्र भेजा सुखी हो,
शोभाशाली विरचित हुई रंग-भू सौख्यदायी,
आया ज्यों ही समय जनता देखनेको पधारी ।

नाना योद्धा, समर-विजयी, विक्रमी, हेति-धारी,
आये राजा, प्रवळ बलमें, ख्यातिमें जो बड़े थे,
ऐसोंपै या विजय बलसे कौन-से साहसीने,
आओ, देखें, परिणय किया सुप्रवुद्धान्मजाका ।

शोभाशाली विरचित हुई रंग-भू भी सुभव्या,
लंबी-चौड़ी परम सुखदा मेदिनी सज्जिता थी,
आभावाली वह बन गई तुंग मंचादिकोंसे
जो थे ऐसे विशद कि उन्हें देखते देवता थे ।

आराकी-सी निशित जिनकी घोर थी तीक्ष्ण धारा,
 ऐसे ऐसे त्रिपम सरुके खड्गको झेलनेमें,
 आरोहीको निरख जवसे कूदता-फाँदता जो
 ऐसे भारी चपल गतिके अश्वको हाँकनेमें,
 वारी वारी अपर भटने जो कलाएँ दिखाई,
 वे थीं ऐसी निरख जिनको लोग थे मोद पाते,
 ज्यों ही आगे सुभटगणके वीर सिद्धार्थ आए,
 वारोंने भी प्रवचन किया योग्यता देखते ही—

“ योद्धाओंमें, अमर-सुत या नागदत्तादिकोंमें,
 चापोंमें, या निशित असिमें, या हयारूढ़तामें,
 एकाकी हैं सुभट-गणमें श्रेष्ठ सिद्धार्थ योद्धा,
 व्याहा जाना उचित इनका सुप्रवुद्धात्मजासे । ”

बोले गोपा-जनक सुखके अश्रु ला लोचनोंमें,
 “ मेरे प्यारे, उचित वर हैं आप ही कन्यकाके,
 सारे योद्धा विजित करके आपने रंग-भूमें
 फैलाई है सुयश-नारिमा शाक्य-वंशानुरूपा ।

“ वाजे वाजें, सुमुखिगण भी मंगलाचार गावें,
 आवे गोपा सुभग जयकी मालिका भेंटनेको,
 होवें सारी उपयम-प्रथा, व्याहकी योजनाएँ,
 मैंने पाया अतुल सुख जो पा सकेगा न कोई । ”

वंशस्थ

नृपालके शासनसे नितंविनी,
 सुवार्णिनी उत्तम मत्तकाशिनी,
 तुरन्त वाला प्रमदा, कुलांगना,
 चलीं तरंगाकुल ज्यों तरंगिणी ।

विनोदिता यौवन-भार-गुर्विता,
 अनूप-अंगांग-अनंग-अंचिता,
 चली उगाती सित-कंज मार्गमें,
 वसन्त-लक्ष्मी सदृशा यशोधरा ।

चली यदा सस्मित हो मनोरमा,
 रदावली अग्रिम-वर्तिनी खुली,
 हुई सभा धौत प्रभात-अंशुसे,
 खिली सभीके मुखमें सरोजिनी ।

निशेशको, तारकको, पयोदको,
 स्र-वक्त्रकी, लोचनकी, कचौघकी,
 चली हराती रुचिसे यशोधरा
 सलज्ज-नम्रा सुपमावगाहिनी ।

विनीत कंठ-स्वरसे सरस्वती,
 स-लज्ज गौरी कल हाससे हुई,
 विलोचनोंसे विजिता समुद्रजा,
 पराजिता थी कटिसे पुलोमजा ।

मनोरमा मूर्तिमती उपा-समा,
 सुधांशु-आभा-सम कान्ति देहकी,
 ढली हुई श्रीकरसे विरंचिके,
 सुमव्यमा कांचन-अंग-यष्टि थी ।

लगा दिये सारंग अंग-अंगमें
 सिग्ना दिये शब्द 'कुहू'-निनादके,
 सुवासिता श्वास-समीरसे किया,
 उसे रचा था मधु-शिल्पकारने ।

ध्वजा-पताका-घट-तोरणदिसे
 सजा हुआ मंडप था विवाहका,
 भरे हुए थे नर-नारी धाममें
 खड़े हुए थे गज-वाजि द्वारपै ।

तुरन्त वाजे बजने लगे वहाँ,
 कृशानु-क्रीड़ा द्रुत छूटने लगी,
 चढ़ी अटारी यव डालती हुई
 अलापती कोकिल-कंठ कामिनी ।

कुमारियोंकी ध्वनि थी पिकी-समा
 शिरस्थ थे मौर मनोज्ञ रूपके,
 अजस्र होता सुमन-प्रदान था,
 लखो सुवासान्तिकता विवाहकी ।

विराजमाना गृह-मध्य-भागमें,
 वरासनस्था युग मूर्तियाँ लसीं,
 विवाह मानों रति-शम्बरारिका
 रचा गया हो फिरसे विरंचिसे ।

मनोज्ञ था आनन शाक्यवीरका,
 प्रफुल्ल सर्वांश-प्रफुल्ल-कंज-सा,
 ललाटमें रोचन-विन्दुकी प्रभा
 पराग-शोभा करती मलीन थी ।

विराजता था कमनीय सीसपै
 बना हुआ मंजु किरीट स्वर्णका,
 मनोज्ञता-मंडित-मौर-मध्यमें
 जड़े हुए हीरक-पद्मराग थे ।

कटाक्ष थे यद्यपि लक्ष्य पा चुके,
 तथापि भ्रू-चाप चढ़ा हुआ लसा,
 सुलोचनाके नयनारविन्दकी
 विचित्र थी भाव-प्रकाशिनी दशा ।

विवाहकी उत्तरदायिता बढ़ी
 चढ़ी कपोलोंपर और लालिमा,
 प्रफुल्ल-प्राया कलिका-समान थी,
 प्रसन्न मुद्रा वदनारविन्दकी ।

मृणाल-सा कोमल बाहु देखके
 विनिन्द्य जानी अपनी कठोरता,
 सुवर्णका कंकण भी इसीलिए,
 अजस्र होता बहु कम्पमान था ।

विलोकती थी प्रियको यशोधरा,
 निहारते थे दयिता कुमार भी,
 हुई व्यतीता कितनी शताब्दियाँ,
 कभी न भूला वह देखना मुझे ।

प्रसून-वर्षा कर नव्य युग्मपै
 अजस्र थीं गान-रता सुवासिनी,
 विवाह-आचार-विचारमें लगी
 स-वेद-मंत्र-च्वनि विप्र-मंडली ।

पुराण-वेदोक्त प्रकारसे तदा,
 हुआ समायोजन जो विवाहका,
 अभूत था संसृतिमें अभावि है,
 त्रिलोकमें भी उस-सा वही हुआ ।

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
96
97
98
99
100

समाप्त होते सत्र व्याहकी क्रिया,
 हुए महा हर्षित सुप्रवुद्ध भी,
 स-प्रेम सिद्धार्थ-समेत कन्यका
 तदा त्रिदा की, कह यों कुमारसे—

शार्दूलविक्रीडित

“मेरा तो वस एक-मात्र धन है, कन्या शुभा सुन्दरी,
 माताकी यह मूर्तिमान करुणा, है स्नेह-संचारिणी,
 देता हूँ अब मैं वही उभयकी आशा अकेली तुम्हें,
 छाया ही इसपै सदैव रखना श्रीहस्तकी, हे सुधी !”

द्रुतविलंबित

रजनि एक घड़ी गत हो चुकी,
 उदित इन्दु हुआ मधु-मासका,
 कपिलवस्तु धराधिप-धाममें
 स-वनिता पहुँचे शक-नाथ भी ।

वर-वधू गुरु-चंदनके लिए
 जत्र पधार गये नृप-गेहमें,
 परम मोद-मयी महिषी हुई,
 मुदित भूपतिका मन हो गया ।

ससुरका पद-चंदन सासका
 कर बनी अति मुग्ध यशोधरा,
 फिर त्रिदा निज-मंदिरको हुए
 वह महाछवि साथ कुमार ले ।

“ हृदय-वाग्नि-दल जगत् हुआ मुझे
 जिन गई मुझको हृदय-वरी,
 तुम मुझे सपना उम भोंवि हो
 जिम प्रकार जगत्-क वचोमको ।

“ सुन ग्यो तुम हो मम वाग्नि, या
 लख ग्यो नम-कृश-वधार हो,
 हृदय गी कटना, मम हो लख
 अतुन लोचनगे तुमको, धिये !

“ तुम धिये, मम अधुन विलके
 बलिन तारकको धुन-सी हुई,
 मम समस्त-विचार-तरंगिणी
 धैम गई तव रूप-मनुदमें । ”

इस प्रकार परस्पर प्रीतिक्रा
 कथन दंपति थे करते जभी,
 लख प्रफुल्लित इन्दु वसन्तका,
 मदनने निज वाण चला दिया ।

शादृश्यविक्रीडित

आता यौवन मेघ-सा घिर जभी सीमंतिनी-अंगमें,
 होके पूरुष भी युवा जब विना कालुष्यके सोहता,
 देता स्वर्ग-प्रकाश-अंशु मधुके रूपुष्यको फुल्लता,
 व्रीडा और अर्धैयके समरमें क्या जीतना-हारना ।

युगल लोचन आयत कर्णलीं
 शरदके सरसीरुह-से खिले,
 सरस वंकिम दृष्टि कुमारकी
 हृदयमें चुभती नटसाल-सी ।

कनक-कुंडल-मंडित कर्ण हैं,
 कल कपोल कलानिधि-खंड-से,
 अधरका छवि-भार असह्य है
 चित्रुक है इस हेतु सटी हुई ।

शशि-विनिन्दक हास-विलास है,
 शुक-समान मनोहर नासिका,
 तिलककी धृति भाल-विशालपै
 कर रही छवि सीमित विश्वकी ।

चमकती जिनमें अचिर-प्रभा
 छलकती छवि कुंडल-रत्नकी,
 सधन सावनकी करते घटा
 सरस कुंचित मेचक केश हैं ।

विमल, पूर्ण, प्रसन्न, महासुखी,
 सरस आनन शाक्य-कुमारका,
 निरखना यदि अञ्ज अनूप हो
 नयन-युग्म चकोर बनाइए ।

अमर-भावमयी वचनावलीं
 श्रवणको मन उन्नत कीजिए,
 सरसता लखने रसराजकी
 भजनमें उनके अव आइए ।

शोभामयी खचित चित्रित भीतियोंपै
 हैं अंकिता सुरतिकी विविधा कथाएँ,
 राधा ब्रजेन्द्र-सँग झूल रहीं, कहींपै
 सीता संदेश सुनतीं हनुमानसे हैं ।

दुष्यन्तसे मिलन मंजु शकुन्तलाका
 था कृष्णसे हरण अंकित रुक्मिणीका;
 देखो अनेक जग-वन्दित प्रेमियोंकी
 हैं भीतिपै लिखित प्रेममयी कथाएँ ।

है सिंह-द्वारपर अंकित शोभनीया
 सिन्दूर-आलिखित मूर्ति गणेशजीकी,
 आराम है सुभग आँगनमें अनोखा
 है बीचमें शयन मर्मरकी शिलाके ।

आभामयी उपल-निर्मित चन्द्रशाला
 उत्कीर्ण-प्रस्तर-गवाक्ष-मयी बनी है,
 मध्यस्थ शीतल निकुंज हरा-भरा है,
 सारे कपाट हरिचन्दनके बने हैं ।

है कुण्डकी परम चित्र-विचित्र शोभा
 श्वेतोपलस्थ जल-निर्झर सोहते हैं,
 उत्फुल्ल पंक-रुह सुन्दर मोहते हैं,
 पाठीन स्वच्छ जलमें बहु रंगके हैं ।

जैसे कुरंग रत स्वैर-विहारमें हैं
 वैसे विहंग कल कूजनमें लगे हैं,
 देवेन्द्र-चाप-सम रंग-विरंगवाले
 उड़ियमान खग सुन्दर सोहते हैं ।

जैसे स-हास नभके विधु-तारकोंमें
 नक्षत्र पुच्छल सुखी बन जा रहा हो,
 जैसे प्रसून-गण-हास-विलास-कूला
 आक्रान्त-यौवनवती सरि जा रही हो ।

विश्राम-गेह-गत राजकुमारके भी
 जैसे अजस्र निशि-वासर जा रहे हैं,
 संव्या-प्रभात अपराह-पराह-ब्रेला
 होती व्यतीत सत्र पूर्ण प्रमोदमें है ।

अन्तस्थ गुप्त-गृह है अति सौख्यशाली,
 जो शिल्पकी अमित अद्भुत शेष-सीमा,
 संयुक्त पुष्प-छविसे सुखदा जहाँपै
 संकीर्तनीय सुमनोहर दीर्घिका है ।

छाई, लखो, सदन-आँगनमें लताएँ
 जो भानुको बदलती सित-भानुमें हैं,
 निर्गम्यमाण जलके नल हैं अनूठे
 जो तुल्य-सौख्य-प्रद शैत्य-निदाघमें हैं ।

सोपान मंजु मणि-मर्मरका बना है,
 है पार्श्वमें खचित चित्र-विचित्रतासे;
 मानों सजीव समुपस्थित मार्गमें हों,
 प्रेमाग्नि-प्रज्वलनकी विविधा दशाएँ ।

हैं शुभ्र शीत तल उज्ज्वल प्रस्तरोंके
 जो हैं तुपार-चय-से ऋतु ग्रीष्ममें भी,
 है रंग-धाम-सुपमा कमनीय ऐसी
 जैसी कि देव-पतिके गृहमें न होगी

है नाम वर्ज्य दुख, क्लेश, जरा-ज्वराका,
 वार्ता यहाँ न अच-पीडित विश्वकी है
 जो रोग-दोष-भय-पीडनसे भरा है,
 जो है अतीव भयभाजन प्राणियोंको ।

धम्मिल्लमें खचित पुष्प मलीन होते,
 वेणी-निबन्ध वनता श्लथ दासियोंका,
 आती न रंग-गृहमें वह भूलसे भी
 है क्षम्य त्तस्त-अपराध न स्वप्नमें भी ।

शार्दूलविक्रीडित

भारी बन्धन भोगके पड़ गये दुर्लभ्य जो सर्वथा,
 वैठा सम्प्रति जागरूक वनके संभोगका पाहरू,
 नारीकी भुज-वल्लरी वन गई ज्यों वज्रकी शृंखला,
 कारागार-समान रंग-गृहके सिद्धार्थ बन्दी बने ।

द्रुतविलम्बित

न सुखमें-दुखमें कुछ भेद है
 ध्रुव रहे उनकी यदि शृंखला;
 न सुख-सा दुखदायक ज्ञानका
 यदि न मानव सौख्य-मदान्ध हो ।

सकम्प-शीर्षा, हरिता, मनोहरा,
 महा मनोज्ञा, अतिरम्यपल्लवा,
 सुगन्ध-युक्ता, वृहती सुखावहा,
 कदम्बकी थी अटवी सु-पुष्पिता ।

अजस्र धाराधर-अंक-वर्तिनी,
 महा प्रतप्ता, करकावगाहिनी,
 विलासिनी सम्यक अट्टहासिनी
 प्रकाशती थी अति-मंजु दामिनी ।

अखंड धारा वरसी पयोदसे
 निदाव-तप्ता महि तृप्त हो गई,
 परन्तु बैठा तरुपै अतृप्त ही
 पुकारता चातक था कि 'पी कहाँ ?'

खिली हुई थी वन-मव्य कामिनी,
 सु-पुष्पिता थी अति मंजु केतकी,
 कली खुली थी रजनी-प्रकाशकी,
 प्रफुल्ल था कैरवका वितान भी ।

निशीथमें, वासरमें अजस्र ही
 प्रमत्त झिल्ली ज्ञनकार-छीन थे,
 तड़ागके या सरिके समीपमें
 सु-तार था निःस्वन भेक-यूथका ।

कुमार अन्यन्त विमुग्ध-चित्त हो
 विराजते थे अति उच्च गेहँपे,
 यशोधरा-मंग महान मोदमें
 विद्योक्तते थे ऋतुकी मनोज्ञता ।

“ प्रमत्त होते वनमें गजेन्द्र हैं,
 अशान्त होते गृहमें गयेन्द्र हैं,
 अभीत हैं, निश्चल हैं, प्रसन्न हैं,
 मृगेन्द्र, राजेन्द्र, सुरेन्द्र, हे प्रिये !

“ प्रमत्त-वर्हीगण-नृत्य देखके
 कदम्ब-शाखी स-कदम्ब हो गये,
 वनी स-कामा कलविंग-मंडली
 वरेण्य-सम्पन्न वसुन्धरा हुई ।

“ प्रशान्त है रेणु, समीर शीत है,
 निदाघके दोष नितान्त शान्त हैं,
 हुई परिश्रान्त नृपाल-वाहिनी
 चले प्रवासी अपने निकेतको ।

“ न मानिनी जो अब मान त्यागती
 मनोजकी है अपराधिनी वहीं,
 पयोद-माला, मिष विज्जुके, यही
 प्रसारती काम-नृपाल-वोपणा ।

“ निसर्ग-शोभा लख यौवनोपमा
 दिशा-वधू प्रौढ़-पयोधरा हुई,
 हुई स-पुष्पा मृदु-गंध केतकी
 विलोक अस्पृश्यतमा तरंगिणी ।

“ गिरा करे मूसलधार नीर भी
 हुआ करे गर्जन वारिवाहका,
 सभी भयोंकी प्रतिघातिनी प्रिया
 महौषधी-सी यदि हो समीपमें ।

जघनपै रंखें सीस यशोधरा
 व्यजन मन्द तदा करने लगी,
 पर न आँख लगी क्षण एक भी,
 कि पलमें प्रभु चौंक पड़े तभी ।

जिस प्रकार प्रसुप्त मनुष्य, जो
 निरखता निजको मरु-भूमिमें,
 भटकता फिरता अति व्यग्र है
 फिर नहीं सकता निज गेहको ।

उस महा मरुके अति तापसे
 परम व्याकुल हो वह व्यग्र हो,
 जब उपाय चले न, तुरन्त ही
 जग पड़े अकुलाकर स्वप्नमें ।

उस प्रकार जगे भगवान भी
 उझकते झकते बकते हुए,
 “दुरित-भीत मनुष्य अभीत हों,
 प्रकट भैं भयका भय हो गया ।”

सुगत-आनन भी अति तेजसे
 परम दिव्य प्रकाशित हो गया,
 नयनमें उमड़ी घुमड़ी घटा
 वरस वारि पड़ा उर-भूमिपै ।

यह विलोक स-शंक यशोधरा
 परम-व्याकुल-चित्त हुई तदा,
 द्रुत लगी प्रियसे वह पूछने,
 “अहह ! नाथ, हुआ दुख कौन-सा ?”

‘ कि प्राणी आते हैं निकल करके शून्य-भवसे,
धुँके धामोंको विरच चढ़ते हैं गगनमें,
युवा हो, भोगी हो, जरठ, जड़, रोगी, मृतक हो
सदा यों ही रोते जवतक न निर्वाण-गत हों ।

‘ इसी वीणाके ज्यों पटलपर हैं तार चढ़ते,
पुनः जैसे-तैसे मृदुल वजते, मूक बनते,
दशा स्रस्ता ऐसी सकल जनकी देख पड़ती,
महाक्लेशापन्ना, क्षणिक-सुखदा, वीत-विभवा ।

‘ सदा प्राणोंके भी सकल जनके प्राण बनके,
फिरी, घूमी, धाई निखिल जगमें रात-दिन में,
विलोका है प्राणी हृदय-तलमें पैठकर भी
भरा संतापोंका उदधि उरमें हाय ! उनके ।

‘ तरंगों आशाकी सतत उठती हैं बलवतीं,
शिलाएँ चिन्ताकी निज सिर उठाये अचल हैं,
भरा है रागोंके सलिल-चरसे सिन्धु मनका,
जहाँ संतापोंके निधन-प्रद आवर्त फिरते ।

‘ इन्हीं तापोंसे हो व्यथित बहु उच्छ्वास भरके,
क्षपाकी तन्द्रामें क्षणभर परिश्रान्त बनके,
विलोका तारे जो परम करुणा-भाव-भय हो
सुनाते थे रोके अयुत मुखसे ताप जगका ।

‘ वहाँ तारे कैसे पहुँच सकते हैं निकट भी,
जहाँ दोषाचारी रजनिकर भी राहु बनता,
जहाँ जाते जाते तपन बनता केतु तमका,
जहाँ ‘सो ही सो’ है, अविगत जहाँ ज्योति सवकी ।

‘ कि प्राणी आते हैं निकल करके शून्य-भवसे,
 धुँएँके धामोंको विरच चढ़ते हैं गगनमें,
 युवा हो, भोगी हो, जरठ, जड़, रोगी, मृतक हो
 सदा यों ही रोते जबतक न निर्वाण-गत हों ।

‘ इसी वीणाके ज्यों पटलपर हैं तार चढ़ते,
 पुनः जैसे-तैसे मृदुल बजते, मूक बनते,
 दशा सस्ता ऐसी सकल जनकी देख पड़ती,
 महाकेशापत्ना, क्षणिक-सुखदा, वीत-विभवा ।

‘ सदा प्राणोंके भी सकल जनके प्राण बनके,
 फिरी, घूमी, भाई निगिल जगमें रात-दिन में,
 कियेका है प्राणी हृदय-तलमें पैठकर भी
 बरा संतापोंका उदधि उरमें हाथ ! उनके ।

‘ लगेमें आशाकी सतत उठती है बलवती,
 शिखरों, निन्तारकी निज शिर उठाये अचल है,
 बरा है रागोंके सन्धि-चरसे विन्धु मनका,
 जहाँ संतापोंके निधन-प्रद आवने फिरने ।

‘ जहाँ तापोंके ही अथित बहू उच्छ्वास भरके,
 क्षणकी लम्बास क्षणभर परिश्रान्त बनके,
 कियेका तार जो परस कठगा-भाव-मय हो
 दुःखान्त व मरु शून्य मुग्धसे ताप जगका ।

‘ जहाँ तार बहू पड़ूच मुक्त है निकट भी,
 जहाँ क्षण-बरा व शिखर भी गहू बनना,
 जहाँ जहाँ बरा ताप बनना केतु बनना,
 जहाँ - जो का जो है, अथित जहाँ शोधि सवकी ।

- ‘ कि प्राणी आते हैं निकल करके शून्य-भवसे,
धुँके धामोंको धिरच चढ़ते हैं गगनमें,
युवा हो, भोगी हो, जरठ, जड़, रोगी, मृतक हो
सदा यों ही रोते जवतक न निर्वाण-गत हों ।
- ‘ इसी वीणाके ज्यों पटलपर हैं तार चढ़ते,
पुनः जैसे-तैसे मृदुल बजते, मूक बनते,
दशा सस्ता ऐसी सकल जनकी देख पड़ती,
महालेशापत्ना, क्षणिक-सुखदा, वीत-विभवा ।
- ‘ सदा प्राणोंके भी सकल जनके प्राण बनके,
फिरी, घूमी, धाई निखिल जगमें रात-दिन में,
विलोका हे प्राणी हृदय-तलमें पैठकर भी
भरा संतापोंका उदधि उरमें हाय ! उनके ।
- ‘ तरंगों आशाकी सतत उठती हैं बलवर्ती,
शिलाएँ चिन्ताकी निज सिर उठाये अचल हैं,
भरा है रागोंके सलिल-चरसे सिन्धु मनका,
जहाँ संतापोंके निधन-प्रद आवर्त फिरते ।
- ‘ इन्हीं तापोंसे हो व्यथित बहु उच्छ्वास भरके,
क्षपाकी तन्द्रामें क्षणभर परिश्रान्त बनके,
विलोका तारे जो परम करुणा-भाव-मय हो
सुनाते थे रोके अयुत मुखसे ताप जगका ।
- ‘ वहाँ तारे कैसे पहुँच सकते हैं निकट भी,
जहाँ दोषाचारी रजनिकर भी राहु बनता,
जहाँ जाते जाते तपन बनता केतु तमका,
जहाँ ‘सो ही सो’ है, अविगत जहाँ ज्योति सबकी ।

चतुर्दिशा पूषणकी मरीचियाँ,
 स-नीर थीं शैत्य-युता प्रकाशतीं,
 महीरुहोंके सलिलाक्त पत्रपे
 दिनेश-आभा चमकी प्रफुल्ल हो ।

शनैः शनैः मन्द पड़ों मरीचियाँ,
 पिशंगता भी उनमें समा चली,
 कभी रहीं मंदिर-मूल-वर्तिनी
 अभी हुई वृक्ष-शिखा-प्रकाशिनी ।

समीर डोला, खग नीडको चले,
 उल्टक जागे, विहँसी कुमुद्वती,
 हुई तमी, तारक दीप्त हो उठे,
 प्रदीप आया, गृह शुभ्र हो गया ।

दिनेशकी मन्द मरीचियाँ सभी
 हुई परिश्रान्त नभावलम्बिनी,
 गतावलम्बा वन अद्रिपै लसी
 विलंबिता पंकज-कोष-रागिणी ।

अहो ! करेगा कल केलि देर लौं
 यहाँ कलानाथ प्रकाम भावसे,
 महातुरा कृष्ण-तमिस्र भेंटके
 हुई स-रागा रजनी रमा-समा ।

निलीन होते खग स्वीय नीडमें,
 निमीलिताक्षी वनती सरोजिनी,
 विकासको प्राप्त हुई कुमुद्वती,
 प्रतीत होती रजनी समागता ।

ब्रिता रहे थे वह सान्ध्य एकदा,
 सुना रही थी रजनीमुखी कथा,
 प्रमोदकी, या उड़ते तुरंगकी
 प्रभूत गाथा जिसमें विदेशकी ।

कहा, कहानी सुन यों, कुमारने
 “ सुनी प्रवीणे, यह प्रेमकी कथा,
 पुनश्च मेरे मनमें समा गया
 समीर-संगीत उसी प्रकारका ।

“ अनन्त-सीमा यह क्या वसुन्धरा,
 न पा सका अन्त स-पक्ष वाजि भी ?
 अवश्य होंगे वह देश भी जहाँ
 प्रकाश होता उदयास्त-भानुका ।

“ यशोधरा-से, मुझसे महा सुखी
 असंख्य होंगे वसते शुची जहाँ,
 परन्तु होंगे कुछ जीव भी वहाँ
 हताश जो, क्लेशित जो, विपन्न जो ।

“ उषानुचारी लख वासुरेशको
 विचारता देख सुवर्ण व्योम मैं,
 ‘ विलोकते जो पहली मरीचियाँ
 मनुष्य कैसे उदयाचलस्थ हैं ? ’

“ दिनेश होता, सखि, अस्त है जहाँ
 विलोकता हूँ वह पश्चिमा दिशा,
 तुरन्त आता यह भाव चित्तमें,
 ‘ मनुष्य कैसे चरमाचलस्थ हैं ? ’

“ अतः करे भूपतिसे प्रभातमें
 विनाति हो दूत मदीय प्रार्थना,
 हुई मुझे संप्रति तीव्र लालसा,
 लखूँ जहाँ लौं शक-राज्य-भूमि है ।

शिखरिणी

“ कहाँ लौं फैला है धरणितल मेरे जनकका,
 कहाँ खेती होती, गहन उगता विस्तृत कहाँ,
 कहाँ लौं हैं नाले, सर, सरित, प्रत्यंत गिरि भी,
 लखूँ मैं भी सारा जगत यह आगार तजके । ”

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार स्वतन्त्र विचारमें
 सुगत अन्यमनस्क हुए तदा,
 पर प्रशान्तिमयी लख यामिनी
 वह प्रशान्त हुए क्षण एकमें ।
 अब नितान्त प्रशान्त निशीथ है,
 रजनि-निःस्वन-गर्भ कठोर है,
 प्रकृति-हृद्गति है अब वन्द-सी,
 अचल-सी जग-जीवन-नाडिका ।
 न अबनी-रव, नीरव व्योम है,
 चिह्न-वृन्द म-नन्द जुके हुए,
 अब, स-तारक अंदरको लखो,
 गुण विहाय हुआ अमहाय-सा ।
 विहग-म्वन्न निकृजित मन्द है,
 सुमन म्वेदित हैं दृढ़ नीदमें,
 प्रणय-जीवनको कण ओसके
 निधनको नभका गुण भेटना ।

शार्दूलविक्रीडित

हे निद्रे, जन-शान्ति-ग्रन्थि, दयिते, तू ही मनोमोहिनी,
 प्रज्ञाकी उपहार-भूमि साखि तू, संताप-शान्ति-प्रदा,
 दीनोंका धन, तू स्वतन्त्र सुख है बन्दीजनोंके लिए,
 प्याला विस्मृतिका पिला सुगतको, संसार सोता रहे ।

“ नगर-व्याप्त नगा पुर-जीविका
जगमगे सब शब्द सौ नगे,
नगरमें सुन्दर-पक दृश्य हों,
सकुन मंगल ही सब ओर हों ।

“ जरल पंगु कर्शांग मन्थके
कुरुचि-पूर्णे कुदरा सहे नदी, ”
रूपतिका यह आसन ग्राममें
वरिश फैल गया इस भीतिसे—

‘ कृश, जराभूत, अंध, अन्कर्ष भी
न निकलें गृहको तत्र मार्गमें,
सकल वासर आज न धान हो
निधन, रोगन या शय-द्राहकी ।’

रूप-निर्देश फिरा जब ग्राममें
लग गये नर-नारि विधानमें,
सदन स्वच्छ सजाकर, द्वारपे
सलिल-सिंचन भी करने लगे ।

पथ-तटस्थित-वृक्ष-शिग्याप्रपे
कलित केतन भी फहरा उठे,
सुमुखियाँ मुदिता सजने लगीं
परम चित्र-विचित्रित भीतियाँ ।

कुल-वधू दधि-रोचन-पुष्प ले
सदन-द्वार सभी सजने लगीं,
सकल साज-समाज रचे गये,
पुर प्रभूत सुदर्शन हो गया ।

‘ सुख-समृद्धि-विधायक राज्य है
 यदि मिले वसुधा सरसा प्रजा,
 तरित और बढ़ो तुम, सारथे,
 सुभगता लख लें सब प्रामकी । ’

नगरमें निकले अति मोदसे
 गति गभीर हुई हय-यानकी,
 मनुज संश्रित थे पथ-पार्श्वमें
 सुगतको लगते अति प्रेमसे ।

का प्रणाम महान प्रसन्न थे,
 सुगुण थे कहते युवराजके;
 कवि-वसु-मर्दीप-निदेशका
 सुदृढ़ पावन थी कर्मी प्रजा ।

मनुज एक पगनु उर्मी बढ़ी
 उदरमें निकला अति दुःखमें,
 अक्षय-दाकर आकर सामने
 उरत करीयेक लड़ा हुआ ।

सकल अंग परा-जन शीर्ष थे,
 कल-कल मज्जत पिडीर्ष थे,
 मिलि विगड-महा पिडीर्ष थे,
 लीकल राज-जगती-दरिद्रीर्ष थे ।

गोदल दूध का निकला लवण
 कटकल-कटकल-कटकल,
 धैर्य-रुद्र-जगती-दरिद्रीर्ष
 उरत-करीयेक लड़ा हुआ ।

समय फैली अति शुभ चांद्रिका
 मित्ती मुदा कैरवि-तारकावली,
 बना नभोमंडल है तडाग-सा,
 निशेश है शोभित राजवंश-सा ।

निशीथिनीके इस दीप्त दीपरो
 प्रकाशिता शुभ प्रभा-वधु हुई,
 सिला हुआ यौवन मंगु कान्तिका
 अनूप है मोद-प्रदान-प्रक्रिया ।

हुई समुद्रूत यदा दिगन्तसे
 मद्दान शोभामयि चारुचांद्रिका,
 चढ़ी हुई थी अपने शिखाप्रपे
 गभीरता अच्युत अन्तरिक्षकी ।

विभासिता वर्तुल तारकावली
 उगी सभी ओर सुधा-निधानके
 महीरुहोंपे कुछ पीतिमा लसी
 महीधरोंमें सितता समा गई ।

सभी स्थलोंमें, सब नीर-पुंजमें,
 सभी वनोंमें सब गेह-कुंजमें,
 तथा हुआ प्लावन चन्द्र-बिम्बका
 गिरी सुधा-धार यथा गिरीशपै ।

अमोघ है ओपधि ओपधीशकी,
 प्रभाव न्यारा क्षणदाधिराजका,
 तडागमें हैं लहरें विभासकी,
 हुआ अकूपार तरंग-युक्त है ।

प्रकाश-आपूरित चक्र-नाभि थी,
 मरीचि-माला-मयि नेमिकी प्रभा,
 समस्त आरोंपर थे प्रकाशते
 अनेकशः मंत्र हिरण्य-नार्भ के ।

पुनः लखा सुन्दर स्वप्न भूपने,
 कि मध्यमें पर्वत और ग्रामके
 खड़े हुए शाक्य-कुलाधिदेवकी
 महा प्रसन्ना मुखकी प्रभा लसी ।

स-नाल-कंजोपम हस्तसे मुदा
 कुमार डंकेपर चोत्र दे रहे,
 प्रचंड निर्घोष पयोद-नाद-सा
 हुआ नभोमंडल-मध्य व्याप्त था ।

स-तर्क हो भूप विलोकने लगे,
 मनोज्ञ था मंदिर एक सामने,
 विशाल उत्तुंग गिरीन्द्र-शृंग-सा
 चला गया उन्नत अन्तरिक्ष लौं ।

कुमार मुक्ता, मणि, हीर, हेम भी,
 लुटा रहे थे आति मुक्त-हस्त हो,
 कि व्योमसे भूपर अग्नि-देव ही
 स्वकीय लीला-कण थे त्रिखेरते ।

असंख्य नारी-नर रंक-यूथ-से
 प्रसन्न थे रत्न-समूह लुटते,
 कृतार्थ हो वे कर जोड़ ईशसे
 मना रहे थे जय अर्क-बन्धुकी ।

ललाट, प्रीवा, कर, जानु, पादकी
 नसें समाकृष्ट अतीव व्यक्त थीं,
 महायती इन्द्रिय-ग्राम-वाजिकी
 प्रकृष्ट बल्गा-रय हों खिंची यथा ।

दवा हुआ था मृग-चर्म कक्षमें,
 सधा पयोभाजन वाम हस्तमें,
 अलक्त माला हिल वक्षपै उठी
 उठी जभी दक्षिण बाँह साधुकी ।

नृपालसे वे ऋषि प्रेष्य-भावसे
 भुजा उठाके जत्र बोलने लगे,
 हुए सभा-आँगनमें प्रतीत वे
 शरीरधारी भवितव्य-से सुधी ।

“ महा कृती भूप प्रशंसनीय तू,
 त्वदीय प्रासाद पवित्र भूमि है,
 प्रभा जहाँकी भुवनातिरंजिनी
 विनाश देगी हृदयान्धकार भी ।

“ लखे धरित्रीपति, सप्त स्वप्न जो
 वही महा मंगल सप्त लोकके,
 प्रतीत होता वह काल आ चुका
 दिनेश होगा जत्र व्यक्त धर्मका ।

“ लखा महींमें नत केतु आपने
 ध्वजा गिरी है वह पाप-मार्गकी,
 प्रसिद्ध थे जो व्यभिचार धर्मके
 कभी न होंगे श्रुत वे भविष्यमें ।

“समुच्च देखा गृह तेज-पूर्ण जो
 वही महामंजुल बुद्ध-शास्त्र है,
 निपात था जो बहु-रत्न-राशिका
 प्रदान था सो निज धर्म-मंत्रका ।

“पलायमाना जन-मंडली न थी
 अनीक थी सो क्षत पाप-कर्मकी,
 प्रकंपिता कानन-वासिनी बनी,
 विलोक आदर्श समन्तभद्रका ।

“सुखी बनो हे नृपते, विलोकके
 प्रबुद्ध, सर्वज्ञ, समन्तभद्रको,
 समस्त-भू-मंडल-राज्यसे कहीं
 बढ़ा-चढ़ा शाक्य-मुनीन्द्र-राज्य है ।

“सुवर्णके अंबरसे कुमारको
 कपायके वस्त्र अर्थात् इष्ट हैं,
 दृशा न होगा उन-सा न हूँ कहीं
 मय-राज्य-श्री-मंपति वार दीजिए ।

“इस्य ऐसा इन मात मयनका
 न अन्यथा हे नृप, मय्य मानिए,
 अवश्य ही धामर मात धीतने
 न ही रहेंगे, न विचार कीजिए ।”

मुनीन्द्रने जो कह भिन्न मयनका
 प्रयाग ज्यों ही निज धामको किना,
 नृपत्यने न न दृत्त-वृन्द भी
 वृन्द-सेवा उनके समीपमें ।

“ होता स्पष्ट प्रभात-स्वप्न-सम है दीर्घायुका मार्ग भी,
 सारी संसृतिका रहस्य बनता सुस्पष्ट वृद्धत्वमें,
 कोई भी मरता नहीं जगतमें प्राणी जरा-रोगसे
 चिन्ता, क्रोध, प्रयत्न, भीति, करुणा, पंचत्वके हेतु हैं ।

“ आती संतत आयु संग नरकी गंभीरता, धीरता,
 दोनों सद्गुण वीरता-परक हैं, कार्पण्यसे हीन हैं,
 होती यौवनमें अवश्य प्रवला संभ्रान्ति-संभावना,
 प्यारे, सम्मति-दानमें जरठ ही भू-लोक-मंदार हैं ।

“ प्राणी जीवनकी पवित्र गति है, संतापकी शान्ति है,
 सारा दृश्य महान मोदमय है, संबोध-सम्मान है,
 होता है अमृतत्व-साधन वहीं वृद्धत्वके देशमें,
 संव्या ही करती प्रभात जगमें, चूडान्त सिद्धान्त है ।

मालिनी

“ सकल दिवस चिन्ता चित्तमें हो प्रजाकी
 सकल रजनि बीते ध्यानमें धर्मके ही,
 सकल-जगत-कर्ता-अर्चना प्रातमें हो,
 सकल-प्रकृति-आशीः साँझ लौं भूप लेवे ।”

- नृपतिके ढिग जाकर प्रातमें
 विनय की इस भाँति कुमारने—
 “ जनक, है मुझको फिर लालसा,
 पुर लखूँ, भवदीय निदेश हो ।
- “ नगरमें उस वासर था फिरा
 प्रभु-निदेश, ‘ रहें सब मोदमें, ’
 सकल हाट तथा सब वाटमें
 परम आनँद-दायक साज थे ।
- “ पर मुझे यह ज्ञात हुआ वहीं,
 प्रकृत मानव-जीवन था न सो,
 प्रथम वार समस्त मनुष्य भी
 सहित-मोद-प्रमोद-विनोद थे ।
- “ यदि मुझे भवदीय प्रसादसे
 प्रकृत जीवन देख मिले कहीं,
 समझ लूँ निजको अति धन्य मैं
 अनुभवी बनना नृप-धर्म है ।
- “ नृपति-धर्म सुना, प्रभु, आपसे,
 परम दुष्कर कर्म कठोर है,
 प्रकृतिकी स्थितिको पहचानना,
 बहु विशिष्ट विधेय विचार है ।
- “ निरख लूँ जन-शासितकी दशा
 रजनि-वासर जो श्रम-लीन हैं;
 समझ लूँ उनकी करुणा-कथा
 नृपति जो न महान अधीन हैं ।

अहि नचाकर जीवक भी कहीं
 कर रहा पथमें बहू खेल था,
 सुन बराट-विमंडित तुंविका
 चिर रहे बहू बालक-वृन्द थे ।

सुमुखियाँ विधुरा समवेत हो
 चिनय थीं करतीं शिवसे कहीं—
 ' वरद, हे प्रभु, हे शिव, शम्भु हे,
 दयित शीघ्र फिरें पर-देशसे । '

शार्दूलविक्रीडित

देखा दृश्य महान मोद-युत हो, सिद्धार्थ आगे बढ़े,
 पीछे छन्दक था, कुमार-मनकी जो वृत्ति था देखता,
 दोनों ' साधु ' बढ़े अमन्द गतिसे ज्यों ही कढ़े ग्रामसे
 आया एक तड़ाग जो पवनसे कल्लोल-आक्रान्त था ।

द्रुतविलंबित

नगरके निकले जब प्रान्तसे
 सुन पड़ा स्वर आर्ति मनुष्यका,
 " अब गिरा, अब, हाय ! मरा अरे !
 अहह ! सह्य न जीवन-भार है । "

जरठ आ निकला उस मार्गमें
 व्यथित क्लेशित पीडित दुःखसे,
 पलित पांशुल था तन धूलिमें,
 विगलिता क्षत-विक्षत देह थी ।

- “ निविध तत्त्व मिलें क्रमसे यदा
समझते सब जीवन हैं उसे,
जब कभी उनमें व्यतिरेक हो
मरण-संज्ञक है घटना वही ।
- “ रुधिर तप्त कभी बल्युक्त था,
अब वही बल-हीन अनुष्ण है,
हृदय था तब हेतु उमंगका,
अब वही भय-कारण-मात्र है ।
- “ अकम्बु देह हुई, नत-पीव है,
सब नगें इगकी अब सख्त हैं;
विगत दैहिक गुन्दरना हुई,
अदृष्ट ! जीवन-मार कहीं गया ?
- “ जरूट-अंग अनीव अगल हैं,
संग रहे दृग हैं दृग-कांशमें,
नर विपन्न, जरा-प्रयमन्न हैं,
न अब नी नजनें अणु देहको ।
- “ अदृष्टे एव अशिव-समाहता,
विपन्नः चाणु वनाद्यन्व ज्योतिषीं
ननुद दौड कदा एव जयसी,
ननु मुदर एव गद कुल है । ”
- “ अनीव एव ननुद-समाहता,
विपन्नः चाणु वनाद्यन्व ज्योतिषीं,
ननुद दौड कदा एव जयसी,
ननु मुदर एव गद कुल है । ”

“ विविध तत्त्व मिलें क्रमसे यदा
 समझते सब जीवन हैं उसे,
 जब कभी उनमें व्यतिरेक हो
 मरण-संज्ञक है घटना वही ।

“ रुधिर तप्त कभी बल्युक्त था,
 अब वही बल-हीन अनुष्ण है,
 हृदय था तब हेतु उमंगका,
 अब वही भय-कारण-मात्र है ।

“ अक्रजु देह हुई, नत-ग्रीव है,
 सब नसें इसकी अब स्रस्त हैं;
 विगत दैहिक सुन्दरता हुई,
 अहह ! जीवन-सार कहाँ गया ?

“ जरठ-अंग अतीव अराल हैं,
 धँस रहे दग हैं दग-कोशमें,
 नर विपन्न, जरा-अवसन्न है,
 न अब भी तजते असु देहको ।

“ जरठके इस अस्थि-समूहको,
 विगम काष्ठ बनाकर व्याधियाँ
 निकल शीघ्र कहीं उड़ जायँगीं,
 प्रभु मुद्गर रहे गद घृत है । ”

जघनमे मिर वृद्ध मनुष्यका
 विलग किन्तु किया न कुमारने,
 दग उठाकर छन्दकसे कहा

“ सच कहो, तुम निश्चल, सारथी ।

- “ जिस प्रकार अनेक कुंरंगी
 सान काननमे हरि दृष्टता,
 जिस प्रकार अकाल पयोःशो
 अशनि हे गिरता गिरि-शृंगी ।
- “ निधन ठीक इसी गिगि-शो, प्रभो,
 मनुजी करता निज चात है,
 मनुज क्या, जगके सब जन्तु भी
 अचल लक्ष्य बने इस मृत्युके ।
- “ सब चधी, सबको, सब भौतिकी
 भय लगा रहता भव-व्याधिका,
 मर रहस्य-निदर्शक भी गये
 निधनका, पर, भेद न पा सके ।
- “ नर प्रसुप्त हुआ जब रात्रिमें
 बन गया वह तो मृत-तुल्य ही,
 न जनमें यह साहस, जो कहे,
 ‘ कल प्रभात हुए जग जायगा । ’
- “ सकल रोग तथा सब केशकी
 अशुभ उत्तरदान-स्वरूपिणी
 विविध व्याधि, अशक्ति, विपण्णता,
 विरस देह, विपत्तिमयी जरा—
- “ जरठता रहती यदि अंतिमा,
 दुख सभी यह भी अवमान्य थे,
 पर, प्रभो, इसकी अनुगामिनी
 अखिल-भूत-भयंकर मृत्यु है ।

सुहृद बन्धु वने अति खिन्न थे,
 स्वजन भी बहु-रोदन-युक्त थे,
 विलपती वनिता सँगमें चली,
 हरित वाँस वँधे मृत-यानमें ।

धवल बख ढकी तनु-यष्टिका,
 मृतक था स्थित चार मनुष्यपै,
 नयन प्रस्तर-से, मुख भूत-सा,
 उदर पुष्कर था, अँग दारु थे ।

विरच एक चिता सरि-कूलपै,
 मृतकको उसपै रख शोकमें,
 कुछ क्रिया करके फिर शीघ्र ही
 जन कलेवर-दाहनमें लगे ।

“ किस महान प्रशान्त प्रसुप्तिके
 विवश हो जनका तन सो गया ?
 विपति-संपति आतप-शीत भी
 अब जगा सकते उसको नहीं ।

“ अब तृषा न, क्षुधा न विपत्तिकी,
 न दुखकी, सुखकी न प्रमोदकी,
 अनलकी जलकी न समीरकी
 कुछ रही उसको अनुभूति है ।

“ अनल आनन-चुम्बन-लीन है,
 पर न ध्यान उसे इस तापका;
 अगर-कुंकुमकी, घनसारकी,
 अब न गंध वसा-पलकी उसे ।

“ वच रहीं कुछ हैं सित अस्थियाँ,
 न नरसे वह भी अब दृश्य हैं,
 पतित जीवनके तलमें हुई
 फिर रसा-सरसा वन जायँगी ।

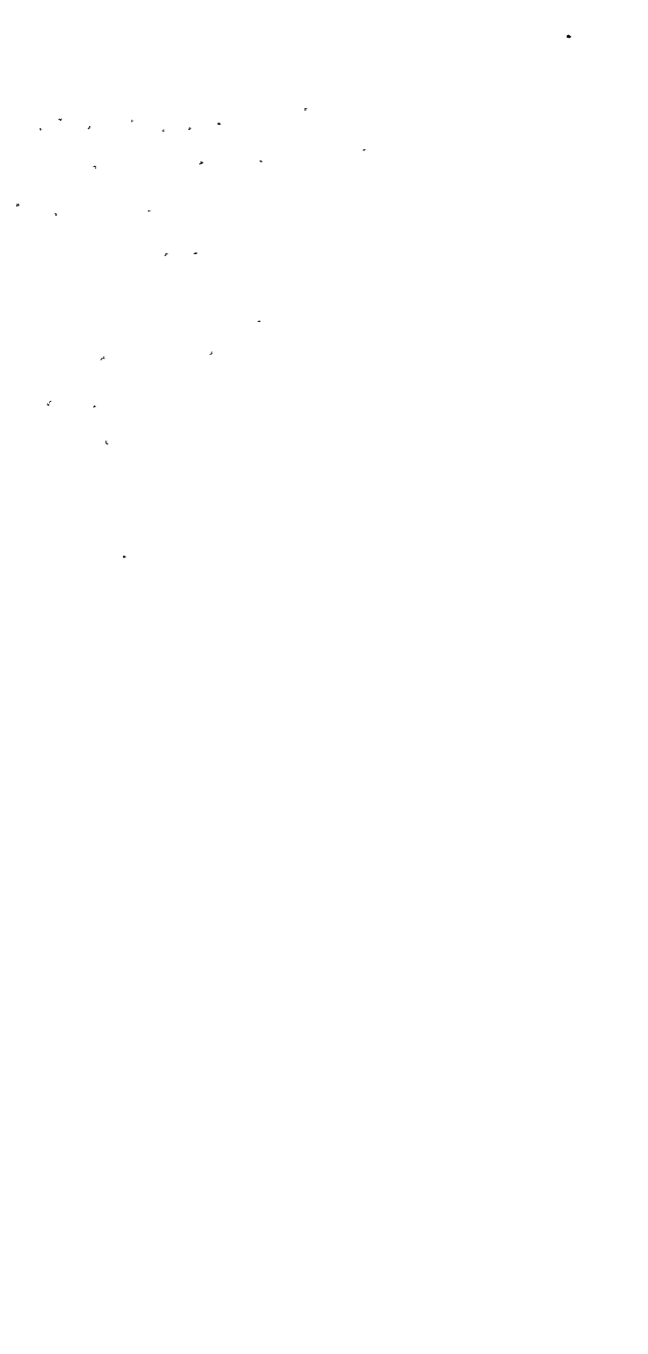
“ कुछ दिनों पहले यह वृद्ध भी
 युवक था, सुख-सिन्धु-निमग्न था,
 प्रवल वायु चला इस बीचमें
 उखड़ पादप भूपर आ गिरा ।

“ गिर पड़ा तरु-सा यह जीव, या
 सलिलमें पड़ डूब मरा कहीं,
 डस गया इसको अथवा फणी
 वन गई क्षत जीवनकी तरी ।

“ कि हत आयुधसे अरिने किया,
 कि तनमें अति शीत समा गया,
 फट पड़ी अथवा छत दीनपै;
 निधन केवल एक निमित्त है ।

“ धनिक, निर्धन, ब्राह्मण, शूद्र, या
 नृपति, भिक्षु, सुखी अथवा दुखी,
 मर गये, मरने, मर जायँगे,
 मरण तो मक्का अनिवार्य है ।

“ निगम-आगम हैं कहते, प्रभो,
 प्रहण हैं करते फिर जन्म वे,
 पर न ज्ञान हुआ यह आज लौं,
 किस प्रकार, कहाँ, किस कालमें ?



द्रुतविलम्बित

अभिनिवेदन राजकुमारका

नृपतिने जब छन्दकसे सुना,

बढ़ चली सुतकी हित-चिन्तना

वह विपश्चित चिन्तित हो उठे ।

द्रुत निदेश दिया कि कुमारके

भवनके सब फाटक बन्द हों,

बस, उसी क्षणसे सबका वहाँ

गमन भीतर-बाहरका रुका ।

वन गया वह रंग-निकेत भी

दुःखद बन्दि-निकेतन-तुल्य ही;

अयगप्ती दृढ़ कील-रामृह-से

प्रकट संभ हुए उस गेहके ।

विद्युध थे स्थित जो दश द्वारों

वह समस्त अजस्र प्रबुद्ध थे,

मुदित होकर स्वस्थ निशीथमें

सुमान सुप्त, न किन्तु अ-बुद्ध थे ।

यदि निर्गन्ध समस्त मनुष्योंमें

सजगता मयता उम नीलिनकी,

नव अयथ्य पुष्पन पाप नी

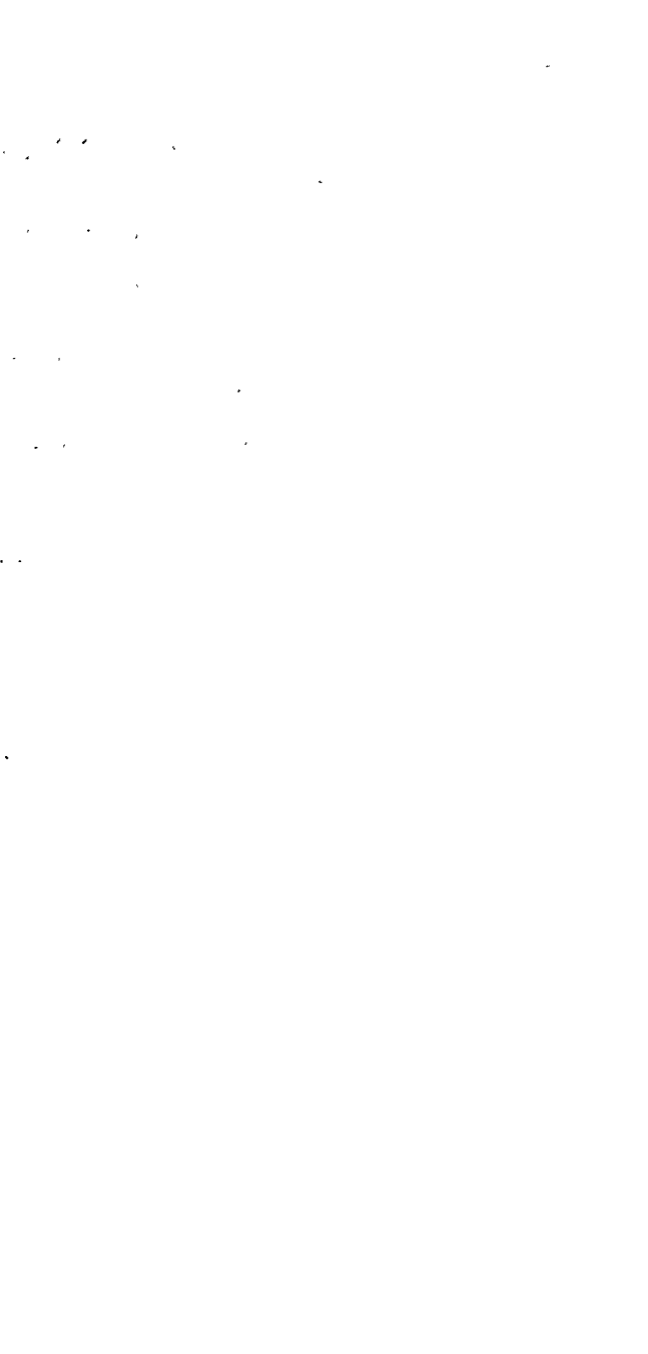
प्रभुन पुष्पदारीर विधाने ।

जब नव नव उदित सिन्धुप दे,

सुसुन्दरी मय जग-प्रयोग दे,

दृग-सिद्धा लक्ष प्रसिद्धाणि,

जब सिद्धिपति सिद्ध हो गया ।



मन्दाक्रान्ता

तो भी कोई सुगत बनते उत्स आलोकके हैं,
 स्वेच्छाचारी विचर जगमें ध्वान्त सर्वत्र खोते,
 तारा, तारा-अधिप, सविता, एककालीन ही हैं,
 तेजस्वी तो सकल युगमें एक-से भासते हैं ।

फूला अशोक-तरु है अति मोददायी,
 गुंजार-युक्त भरते अलि भाँवरें हैं,
 देखो, तरुस्थ खग-संहतिको जगाते
 भूपै मध्रुक गिरते परिपक्व होके ।

नीलाभ व्योम अब निर्मल हो गया है
 हैं रौप्य-धौत अति मंजु दिगंगनाएँ,
 क्या ही अनादि नभ और अनन्त भूपै
 फैली हुई सुभग सुन्दर चंद्रिका है ।

शाखा-समूह हिम-दीधिति-धौत-सा है,
 हैं पत्र-पुष्प सत्र शोभित कौमुदीमें,
 लोनी लता ललित-पेशल बल्लरीकी,
 आराममें अकथनीय प्रभा लसी है ।

उत्कंठिता सरस रागवती मनोज्ञा
 बैठी हुई सलिलके तटपै चकोरी
 है मंत्र-मुग्ध मनसे लखती शशीको
 प्रत्येक वार निज पक्ष फुला रही है ।

क्या स्वच्छ नीर-मय निर्झर हों रहे हैं,
 जो शब्द मन्द करते सित यामिनीमें ।
 मानों सभी निरत विश्रुत गानमें हैं,
 गाते हुए विरुद चैत्र-विभावरीका ।

अत्युज्ज्वला रजनिकी कमनीयतामें
 है व्योमकी सुभग मेचकता अनूठी,
 कैसी समृद्धि अवदात निसर्गको है
 मानो सतोगुणमयी धरणी हुई है ।

जो दार-पाल-गानि विभूष हो रही है,
 मुद्रामयी अंग-न अंकन-शुक्त सो है,
 होनी समीर-रान-हार मभीरवासो
 निद्रा-निमग्न रात्र संश्रुति हो रही है ।

विश्राम-भामपर मंजु मयूष-माला
 होती निविष्ट गूढ-मध्य मन्दाक्ष-द्वारा,
 सीती दुर्द्ध विभु-मुष्णी रमणीजनोकी
 आदर्श-से अचरये शुक जूमती है ।

श्रीरंग-गेह-परिचालन-शील बाला
 हैं सो रहीं सकल भूपर उर्ध्वशी-सी,
 आसक्त नेत्र पड़ते जिस कामिनीपै
 रंभा-समान दिखला पड़ती वही है ।

प्रत्येक सुप्त रमणी अति ही मनोज्ञा
 निद्रा-निमीलित-दृशी अत्र ईदृशी है,
 मानों विलोक रजनी दृढ़-वद्ध होके
 ले अंकमें कमलिनी अलि सो गई है ।

कैसी प्रसुप्त लघ्वि रूप-प्रदर्शिनी है,
 आँखें जहाँ निरखतीं रुकतीं वहीं हैं,
 जैसे समूह पटु-गारुड-नीलकोंके
 आकृष्ट नेत्र करते द्रुत दर्शकोंके ।

सोतीं पड़ीं अवनिपै परिचारिकाएँ,
 है गात्रकी न जिनको सुधि वल्लकी भी,
 आधे-खुले सुभग मंजु उरोज ऐसे
 जैसे 'अनूप' कविकी कविता लसी हो ।

देखो, सरोज-कर एक उरोजो है,
 है दूसरा सुमुगि के सुगको शिपाए,
 मानों स-नाथ सरसीरुह शम्भुपै या
 राकेशपै स-विष केरपती कवी है ।

है पुंडरीक-सम आनन चारुशोभी,
 आमा कपोलपर कोहनशोपमा है,
 इन्दीवराम्बक समावृत है निशामें,
 है योपिता सकल मंडु मृणाळिनी-सी ।

है एक जो सुमुगि श्यामल आश्रयवाडी,
 अत्यंत गौरतम तो मुग्य दूसरीका,
 सिन्दूर-लिप्त मृदु आनन अन्यका है,
 देखो, त्रिरंग विधु-विम्ब-मयी त्रिवेणी ।

भ्रू देख देख मनमें यह भ्रान्ति होती
 कोदंड दो कुमुमशायकके पड़े हैं,
 हैं पक्ष्म जो विनत बन्द विलोचनोंमें
 वे पंच-त्राण-शर-से उतरे हुए हैं ।

विम्बोष्ठ है सुघर, जो कुछ ही खुले हैं,
 है मध्यगा धवलिमा द्विज-राजिकी भी,
 श्री-युक्त ओस-कण सुन्दर मोतियों-से
 मानों प्रफुल्ल सरसीरुहमें पड़े हैं ।

क्या ही प्रकोष्ठपर कंकण सोहते हैं,
 हैं गुल्फमें विशद बंधन नूपुरोंके,
 ज्यों ही सचेष्ट हिलते अंग कामिनीके
 निर्घोष पंचशर-दुंदुभिका सुनाता ।

श्वेताभ कृलपर संस्थित पथरोपे
 देती निसर्ग-शिशुको थपकी नदी है,
 ऐसे सुमन्द रवको सुनती-सुनाती
 सीमंतिनी सकल भूपर सो रही हैं ।

दूवी सुपुत्ति-सरसी-रसमें, निशामें,
 हैं कामिनी-कमलिनी अति ही मनोज्ञा,
 मँद्रे हुए सुभग अंबुज-अंबकोंको
 आदित्यके उदयका क्षण देखती हैं ।

पर्य्यक-चाम-महिपै यह गौतमी हैं
 गंगा, लखो, शयन-दक्षिणमें पड़ी है,
 दोनों सखी परम रूपवती गुणाढ्या
 हैं सेविका-चलयकी मणियाँ मनोज्ञा ।

हैं गन्धसार-मय गेह-कपाट सारे,
 स्वर्णाभ मेचक हरे परदे पड़े हैं,
 सोपान-मार्ग चढ़ सम्मुख दृष्टि डालो,
 सिद्धार्य-रंग-गृह है यह मोददायी ।

कौशेयके परम पूत विच्छे विच्छौने
 जो कंज-पत्र-सम सौख्यद अंगको हैं,
 हैं दाम भित्तिपर सिंहल-मौक्तिकोंके,
 यों अन्तरंग गृहका हँसता खड़ा है ।

नेत्राभिराम लल मर्मरकी बनी है,
 उन्कीर्ण चित्र जिसमें ब्रज-रत्नके हैं,
 कैसे गत्राक्ष अति शोभित चंद्रिकासे
 भृंगप्रिया-मुकुल-संभ-गेह-से हैं ।

अतिथि सीमा, विपन्न-वधु सी जने
 हरीशक्ति, सप्त-विधावता,
 जमीन ही येन परत-मानसी
 चकारिनी तब किनेकने लगी ।

गजोपमा ही अति लोक-मकुल
 मणीमणि नील-कुमारके गर्द,
 कसोडका चम्बन तीर बाग ले,
 कहा, “ अहो ! बाग, उद्यो, दया करो ।

“ स्वकीय मर्मस्थ-तन्त्र-व्यागों
 प्रमाद-निद्रावत ही गर्दि यदा
 दृष्ट-मुझे भीषण तीन स्वयं, तो
 हुआ स-गोमांश अगिर, मे उठी । ”

“ अहो अहो ! अम्बुज-न्ये-वने प्रिये,
 कटो-गर्भे, अनुगम-गर्भिते,
 हुआ तुम्हें क्या दुःख, स्वयं क्या हुआ ?
 कहो, कहो, शोध, अधीर मे हुआ । ”

“ प्रभो, विद्योका पहले मभात नो
 विशाल था सो वृष दीध देहका,
 महाबली, उन्नत-माल, विक्रमा,
 डकारता था वह वृष-वृमंक ।

“ प्रदीप्त थी रत्न-प्रभा ललाटप,
 यथा उगा ऋक्ष हिमाद्रि-श्रुगपे,
 समस्त पाताल-मही-प्रकाशिनी
 अहीराकी थी मणि गौर भोगपै ।

“ उसी घड़ी एक ध्वजा उठी, प्रभो,
 चतुर्दिशा वेष्टित दिव्य ज्योतिसे,
 समस्त भू-मंडलको प्रकाशती
 अवलन्त माणिक्य-समूह-संगुता ।

“ मरीचि-माला-मयि व्रजयन्तिका
 प्रकाशती थी हृदयान्धकार भी,
 स-मोद प्राणी इस भाँतिसे हुए,
 मिली उन्हें इच्छित दिव्य ज्योति ज्यों ।

“ चला तदा मंद सभार पूर्वसे,
 ऋड़ी प्रसूनावलि केतु-वाससे,
 प्रकाशिता चंचल चेलपै हुई
 पुर्नांत दैवी लिपि स्वच्छ-वर्णिनी ।

“ तृतीय जो स्वप्न हुआ, कृपानिवे,
 लगा मुझे दुःखद सो अतीव है,
 अहो ! हुई अम्बर-चारिणी गिरा,
 ‘ समीप ही है अब काल आ गया ।’

“ विलोकने दक्षिण-पार्श्वमें लगी,
 लगा हुआ शून्य पलंग आपका,
 पड़े हुए केवल वल्ल थे वहाँ
 वही, प्रभो, थे अवशेष आपके ।

“ पड़ा हुआ था कटि-बन्ध आपका
 लगा मुझे दंशन-शील सर्प-सा,
 मदीय केयूर अदृष्ट हो गये
 लगा मुझे कंकण भार-रूप ही ।

“ यह निर्वन प्रीति, यशोधरे,
 अति अभेग, अल्लेग, अक्ताव्य है—
 यदि संगोग, विगोग अनर्ग है,
 यदि विगोग, संगोग अनर्थ है ।

“ निद्रित है तुमका, किस भाँति मैं
 रजनि-वासर हूँ यह सोचता,
 ‘ किस प्रकार निरामय विश्व हो,
 मनुज-जीवन सौह्य-समेत हो । ’

“ समयसे चलती किसकी, प्रिये,
 नियति भी सब भाँति अलंघ्य है,
 दुख पड़े हमपै तुमपै कहीं,
 उभय संयमसे सह लें उसे ।

“ अपरके दुखसे दुख है मुझे,
 अति असह्य, प्रिये, अघ विश्वके;
 किस प्रकार लगा गृहमें रहे
 मन सदा सब भाँति चरिष्णु है ।

“ सकल जीव मुझे प्रिय विश्वके,
 अधिक हूँ उनसे कुल-जातिके,
 इन सभी जनमें सब भाँतिसे
 प्रियतमा, तुम हो मुझको, प्रिये ।

“ हृदय-खंड मदीय, यशोधरे,
 निहित है वह जो तव गर्भमें,
 जनकसे, तुमसे, सब विश्वसे
 अधिक आनंद-दायक है मुझे ।

“ अत्र करो दुःख-त्याग, वरानने,
 शयन स्वस्थ करो, दृग-मूँद लो,
 फिर न हो कटु स्वप्न इसीलिण्
 सजग हूँ स्थित मैं, तुम सो रहो । ”

शिखरिणी

तदा गोपा सोई, सिसक कर दुःस्वप्न-दुःखसे
 पुनः सोते सोते ‘समय अत्र आया,’ सुन पड़ा,
 प्रियाके सोते ही विगत कर चिन्ता हृदयकी
 लखे फूले तारे रजनिकर-संयुक्त नभमें ।

निहारे तारे जो चमककर मानों कह रहे,
 ‘तमिस्रा है आई जब सुख करो, या दुःख हरो ।
 बनो चाहे राजा सुख-विभवसे युक्त अथवा
 तपस्याके द्वारा सकल जगका मंगल करो ।’

कहा, “ हे हे तारो, समय वह आया निकट ही
 करूँगा मैं रक्षा भव-रुज-निमग्न धरणिनी ।
 नहीं हूँगा राजा मुकुट सजके वंश-गत जो,
 यहाँ आया हूँ मैं सकल जगका ताप हरने ।

“ न इच्छा देशोंको विजित कर होऊँ नृपति मैं,
 बहेगी धारा-सी मम आसि न संग्राम-महिमें,
 न होंगे लोहूसे हय-गज कभी रक्त रणमें,
 कलंकीभूता यों अत्र न मुझको ख्याति करना ।

“ गुफा होगी मेरी वसति, सुख-शय्या धरणिनी,
 त्वचा वृक्षोंकी भी परम सुखकारी वसन-सी,
 सदा संगी-साथी विपिनचर होंगे सुहृद-से,
 फिहूँगा योगी हो सुखद जगके भोग तजके ।

“अहो ! मेरी बामा, सुत, जनक, वासी नगरके,
सहो जैसे-तैसे कुछ दिवस लैं जो दुख पड़े ।
तुम्हारे दुःखोंसे यदि सुखमयी ज्योति प्रकटे,
सभी प्राणी पावें सुपथ उस निर्वाण-गृहका ।

“अतः जाता हूँ मैं, समय ढिग, संकल्प दृढ़ है,
न लौटूँगा प्यारी, जब तक न होगी सफलता,
धराशायी होगा जब तक न सो केतु अवका,
ध्वजा ऊँची होगी जब तक न सो, जो लख पड़ी ।

“तमिस्त्रै, हे निद्रे, कमल-दल यों वन्द कर दो
कि गोपाके दोनों नयन-पुट भी आवृत्त रहें;
अहो ! जोत्स्ने, वामा-अधर अब संपुट कर दो
सुनाई दें ‘हाहा-’ वचन उसके जो न मुझको ।

“अहो ! सोते सोते वचन सुन ले, हे सहचरी,
सदा तू देती थी परम सुख, है दुःख तजना,
न छोड़ूँ तो भी तो अति दुखद है अन्त सबका
जरा है, बाधा है, मरण-गति है, जन्म फिर है ।

“प्रिये, निद्राका-सा अगमतर लेखा मरणका,
धराशायी होना, अचल बनना, जाड्य गहना,
हुई स्थाना माला तब फिर कहाँ गंध उसमें ?
दशा तैलाम्यंगा जब न रहती, दीप बुझता ।

“यथा शाखाओंमें अति लहलहे पत्र लगते,
धराशायी होते, पतझड़ उन्हें शुष्क करता,
कुठाराघातोंसे चिटप कटते, दारु बनते,
न ऐसे खोऊँगा परम प्रिय है जीवन मुझे ।

कलत्र सुता, सखियाँ असंज्ञ थीं,
 प्रसिद्ध वे भी अत्रिकल्पनाय हैं,
 परन्तु तो भी खुल भेद यों गया
 कपाट जैसे रँग-गेहके खुले ।

खुले हुए गेह-कपाट थे पड़े,
 प्रगाढ़-निद्रा-वश द्वार-पाल थे,
 चले युवा कृष्ण स्वतः स्वतंत्र हो
 यथा अ-त्रंदा वसुदेवके विना ।

अर्घार हो शीतल श्वास ले बहा
 समीर लोटा चरणारविन्दपै,
 प्रसूनने स्वागत चित्त खोलके
 किया उपेक्षा करके प्रभातकी ।

हिमाद्रिसे सागर लौं चतुर्दिशा
 उठी नवाशा तडिता-तरंग-सी,
 महान संगीत गभीर व्योममें
 तदा हुआ विश्रुत जागरूकको ।

मनोहरा ज्योति जगी दिगन्तमें,
 विमानपै थे समवेत देवता,
 त्रिमुग्ध दिग्पालक-वृन्द भी सभी
 खड़े हुए निश्चल वद्ध-हस्त थे ।

यशोधरा गर्भ-युता विदेहजा,
 कुमार साकेत-नरेश राम हैं,
 स-दुःख सीता-वनवास था वहाँ,
 स-हर्ष सिद्धार्थ-प्रवास है यहाँ ।

कल्पवृक्ष, यन्त्रियों काज भी,
 परिहृष्ट ये भी अतिकल्प-साज हैं,
 पाशु तो भी लुप्त भेद गों गजा
 कला-वैद्यों के गेहके लुटे ।

लुटे हुए गेह कला-के पाये,
 अमाह भिन्न-वचन-पाठ-ये,
 चले पुनः कृष्ण स्वतः स्वतंत्र तो
 यथा-अ-वरी-वपुदेवके विना ।

अभीर हो शीतल इवाम ले वदा
 मभीर को प्र-वर्णा-अ-न्दो,
 अग्नये स्वामत चित्त-स्यो-यंके
 किमा-उोशा-क-के-प्रभावकी ।

हिमाहिमे माग्य लो-चतुरिंश
 उद्यो-नवाशा-तारिना-तंग-भी,
 महान-मोगीन-मभीर-व्योममें
 तदा-दृशा-विश्रुत-नामस्ककी ।

मनोहम-व्याति-जगा-दिग-तमे,
 विमानपं-ये-ममवत-देवता,
 विभुस्य-दिग्पालक-वृन्द-भी-मभी
 लड-दृष्ट-निश्चल-वद-हस्त-ये ।

यशोवम-गन-युता-विदेहवा,
 कुमार-माकेत-नरेश-राम-हैं,
 स-दुःख-गोता-वनवास-था-वहाँ,
 म-हप-मिन्नाथे-प्रवास-हे-यहाँ ।

शार्दूलविक्रीडित

“ ब्रह्मों, विष्णु, महेश, दक्ष, मघवा, नीरेश, यक्षेश भी,
 सारे शैल, नदी, शशा, मिहिर भी, अंभोधि भी, वायु भी,
 दैत्यादैत्य, मनुष्य, नाग, खग भी, जो गूढ़ वा व्यक्त हों,
 अंगीभूत सभी विराट-चपुके, कल्याणकारी बनें ।

“ जो कीकाल-स्वरूप हो विहरता मध्याह्नके घाममें,
 पृथ्वी, अग्नि, समीर, व्योम, जलमें साकार जो भासता,
 विश्वात्मा वह निर्विकार जगकी उत्पत्ति या नाशसे,
 रक्षा है करता सदैव सत्रकी त्रैलोक्य-त्राता वही ।

प्रतानिनी-पुंज हिला समीरमें,
 तरंगमालाकुल रोहिणी हुई,
 सहस्रशः भानु सहस्र-भानुके
 तुरन्त छूटे महिको दिगन्तसे ।

तडागके कूल सुवर्णसे मढ़े,
 हिरण्य बन्धूक-प्रसूनं भी हुए,
 बने सभी पादप जातरूपके
 सु-चारु चामीकर-सी लसी मही ।

द्रुतविलम्बित

यह न थी स्थिति हा ! उस प्रामर्का
 कपिलवस्तुपुरी कहते जिसे;
 सुर-समीहित आनन्द-सिन्धुमें
 उमड़ता दुख-अंबुधि था वहाँ ।

श्रवणमें घुसता खर-शूल-सा
 विहगका मृदु गायन उग्र हो,
 अनलके सम दाहक हो गई,
 अति प्रफुल्लित कोकनदावली ।

गगनकी वह सुन्दर लालिमा,
 निधनकी भयदा रसना बनी,
 सरितकी लहरें असु-लेहिनी,
 लहरने खलु व्यालिनि-सी लगीं ।

हिल उठीं बहु बल्लरियाँ यथा
 कँप उठीं सह विज्जु-प्रहार ही,
 जलज-पल्लव भी जल-बुन्दके
 मिय हुए बहु रोदन-लीन थे ।

जग पड़ी उस काल यशोधरा
 नयन खोल यदा लखने लगी,
 शयन शून्य विलोक हुई दुखी,
 शुक उड़े उसके करसे तभी ।

हिम यथा दलता जलजातको,
 निगलता विधुको अब है यथा;
 दयितकी अनुपस्थितिने तथा
 मन किया हत वज्र-विघात हो ।

अवगता घटना द्रुत हो गई
 रजनिमें पति-देव-प्रयाणकी,
 तदपि कातर हो रँग-गोहमें
 वह लगी उनको अवलोकने ।

रुदनसे परिप्लावित-लोचना
 हृदयको पकड़े निज हाथसे
 विलखती बहु भौंति यशोधरा
 विरह-वातुल हो बकने लगी—

“ अहह, नाथ, हहा ! मम प्राण हे !
 हृदयके धन, जीवन-सार हे !
 विरह-वारिधिमें तजके मुझे
 कत्र, कहाँ, किस ओर चले गये ?

“ कुपरिहास मुझे इस भौंतिका
 न रुचता, अब नाथ, कृपा करो;
 प्रकट होकर दर्शन दो मुझे,
 न तु गिरी, विलखी, तड़पी, मरी ।

“ स्मरण आप करें जल-कौलमें
 हृदयमें जत्र कंज-कली लगी,
 बहुत-ही प्रभु हे शित हो उठे
 अधिक कर्कश थी मम पाणिसे ।

“ कर वही तजके—जिसको कभी
 स-रति नाथ, किया भृत आपने—
 चल दिये चुपके पर-देशको
 कर मुझे असहाय-अनाथिनी ।

“ नल-नरेश यथा निज नारिको
 लख प्रसुप्त विहाय चले गये,
 उस प्रकार प्रभो, किस दोपसे
 तज मुझे तुम हाय ! चले गये ?

“ प्रिय, असंभव है सत्र भाँतिसे
 इस प्रकार मुझे तजना तुम्हें;
 अति-अमोघ-विमार्जन-लेपसे
 कठिन है कर-चिह्न विगाड़ना ।

“ गत भवान्तरमें मुझको, प्रभो,
 विपुल बार किया परिणीत है,
 वश किया जिसको इस भाँतिसे
 अब उसे प्रभु, भूल गये कहाँ ?

“ प्रणय-अंकुशसे मन-नागको
 पलट दो मम ओर, कृपानिधे,
 यह विशाल वियोग-वनस्थली
 लहलही अति है, मरु-भूमि हो ।

जब कुछ-कुछ आई चेतना अंगनाके,
 जल-रहित झखी-सी व्याकुला हो उठी सो;
 मुखपर बरसाती आपदाकी घटाएँ
 अलि-अवलि धिरी थी आर्ति-कादम्बिनी-सी ।

वह उपवन-भूपै जा पड़ी व्याकुला यों,
 विदलित वन-देवी मूर्छिता हो गई ज्यों,
 अगणित कण छाये स्वेदके भालपै जो
 वह लख पड़ते थे भाग्य ही रो रहा ज्यों ।

विलख-विलख गोपा विप्रयुक्ता कृशांगी
 निरख-निरख स्वामी-मार्गको रो रही थी,
 चिलक-चिलक रोये चूनरीके सितारे,
 पर वपुष जलानेको न पर्याप्त वे थे ।

कच-तिमिर-त्विपाके वृन्दसे वद्ध-आभा
 नव-रवि-कर-श्रेणी-शीर्ष-सिद्ध-रेखा,
 जलद-हत चिता-सी तेज-हीना असेता
 प्रकट कर रही थी मृत्यु-आसन्नता ही ।

अमित अरुण होके सूर्य भी सान्त्वनाको
 दृग्-युत कहने थे, “ पुत्रिके, धर्म-धीरे,
 विधि-विहित-व्यवस्था कर्मसे प्राप्त होती,
 तपन बन गया हूँ, वृमता हूँ सदा ही । ”

अति दुःखित धरा भी पिंगला हो गई थी,
 स-दुःख पवनके थे आ रहे मंद झोंके,
 सकल गगन नीला शोकसे हो गया था,
 करुण-रुदन, हाहा ! निन्नरिने मचाया ।

अवगत कर सारा वृत्त शोकाकुला वे
 अविरल जल-धारा लोचनोंसे बहातीं,
 बहुविधि समझातीं, पोंछतीं अश्रु भी वे,
 स्मरण फिर दिलातीं गर्भका स्वामिनीको ।

मन्दाक्रान्ता

ज्यों ही जाना अवनिपतिने वृत्त तो बज्र टूटा,
 भूपै ऐसे वह गिर पड़े शुष्क एरंड जैसे,
 त्यों ही ऐसा निखिल नगरीमें समाचार फैला,
 यात्रा जाने कत्र, किसलिए, आज सिद्धार्थने की ।

धाये प्राणी सकल पुरके, भूपके द्वार आये,
 जैसे-तैसे विदित करके वृत्त डूबे दुखोंमें,
 धारा-वाही सलिल बहता था दृगोंसे सभीके
 गंगा पद्मा हिम-कुधरसे ज्यों निराधार छूटीं ।

रोगी वाला जरठ शिशुके वृन्द ही सन्नमें थे,
 सारे प्राणी इतर नृपके द्वारपै रो रहे थे,
 उच्छ्वासोंका अनिल बहता था महा चंडतासे,
 आँखोंमें भी उदधि उठके मारता था हिलेरें ।

मानों भूके विरह, विपदा, क्लेश, संताप, पीड़ा
 राने आये नृपति-गृहके द्वारपै देह-धारी,
 हाहाकारी जन-रव हुआ अभ्रके कान फूटे,
 डूबी सागी विपति-विकला राजधानी दुखोंमें ।

सारी नारी कथन करतीं दुःखसे दग्ध होके
 “ हाहा ! गोपा नवल रमणी मन्दभाग्या बड़ी ही,
 पाया ऐसा धन मधुरता-धाम था जो यशस्वी,
 खोया भी हा ! कतिपय अभी व्याहके वार वीते । ”

१४—संवाद

वंशस्य

तुरंगको, छन्दको, स्व-वेशको
विहाय सिद्धार्थ चले प्रसन्न हो,
कुरंग जैसे दृढ़ जाल तोड़के
स्वतंत्र सानन्द पलायमान हो ।

कुमार आगे जिस ग्रामसे कड़े,
कदल-भिक्षा रुचि-युक्त की जहाँ,
कुतूहल-स्तम्भित पौर भी वहाँ
विलोकते थे छवि नव्य भिक्षुकी ।

कुशेशयों-से दृग-हस्त-पादको
विलोक सामुद्रिक भी सतर्क थे,
“ समस्त हैं लक्षण भूमिपालके,
तथापि क्यों भिक्षु कषाय-वास है । ”

शकेश-दिव्यांग-प्रभा विलोकके
 विनीत भावान्वित पान्थ बोलते,
 “ कृपानिधे, हो यदि आपकी कृपा
 चले चले साथ सुदूर देश लौं । ”

स-बाल नारी-नर, वृद्ध, रुग्ण भी,
 विलोकनेको प्रभुको स्व-नेत्रसे
 समूह होते, जत्र ग्राम-मध्यसे
 कपायधारी कहते शकेश थे ।

विलोक कोई श्रम-खिन देवको
 किलिंज थे लाकर शीघ्र डालते,
 विनीत होके कहते कुमारसे
 “ यहाँ त्रिराजें क्षण एक तो, प्रभो, ”

विलोकके सुन्दरता शरीरकी
 प्रफुल्ल थे लोचन पौर-वृन्दके,
 चले सभी सन्न विहाय संगमें
 दरिद्र-से कंचन दृष्टते हुए ।

तुषार-सा गौर शरीर मंडु था,
 कुरंग-से अंबक तर्क-प्राय थे,
 ललाट था उन्नत चन्द्र-खंड-सा,
 प्रफुल्ल था आनन पुंढरीक-सा ।

परशु था खड्ग न पात दंत था,
 न थे पर-जाण तथा न पादुका,
 न तत्र ही था किरण न वेद न थे,
 शरणा था भू-शिका न शंका ।

कुतुब्धिसे पादप पारिजातको
 पयोधिको द्वार किया विरंचिने,
 न भेजता जो इनको अरण्यमें
 उसे महाविज्ञ पुकारते सभी ।

बिलोक जाते पयमें शकेशको
 उठे मनोभाव इसी प्रकारके;
 समीर था मन्द, स-मेव व्योम था,
 अनुष्ण था काण्ड, अघृष्टि मार्ग था ।

चले, पडूँचे जब दूर देशमें
 सुरापगा पार किया कुमारने,
 कछारसे दक्षिणको गये जहाँ
 निरंजना-निर्झरिणी-प्रवाह था ।

तदा लखी श्रीवनने वसुन्धरा
 प्रमूर्ण हिंगोष्ट-अँकोट-गुल्मसे,
 सुहावने वृक्ष मधूकके जहाँ
 बना रहे थे सुखदा वनस्थली ।

पड़ी वहीं सैकत फल्गु मार्गमें,
 अहार्य जो फोड़ चली सपाटमें,
 विदारती स्थूल शिला गई गया—
 पुरी प्रसिद्धा मृत-प्रेत-नारिणी ।

पड़े कई सैकन वप्र मार्गमें
 मरुस्थली है उरु-त्रिल्वकी जहाँ,
 उसे किया पार, मिली उन्हें तदा
 हरी-भरी शाद्वल-भूमि सामने ।

अजस्र ही निर्झरके प्रवाहमें
 विहार-संयुक्त मराल-युग्म थे,
 जहाँ समुत्फुल्ल लसे तडागमें
 सु-गौर-नीलारुण वारिजात भी ।

तृणावली-मंडित गेहमें वहाँ
 निविष्ट थे कर्षक सेन-ग्रामके;
 उसी महीसे कुछ दूर वप्रपै
 स-मोद बैठे प्रभु वृक्षके तले ।

विचारने श्रीधन बैठके लगे
 मनुष्य-प्रारब्ध-रहस्य ध्यानसे,
 विरोध भूका, परिणाम कर्मका,
 पुराणका आशय, तत्त्व शालका ।

विचारके सृष्टि-विनाश विद्वक्का
 विलोकने वे उस भेदको लगे,
 तमिन्न आता जिस ज्योति-पुंजसे,
 प्रकाश जाता जिस अंधकारमें ।

यद्यैव दो अम्बुद-मण्य सेतु-स्ता
 सुरंग हो रुद्र-शरास फैलता,
 तद्यैव है भाष्यम जगम-मृत्युका
 त्रिलोकमें जीवन-नामधेय जं ।

प्रकाश देता द्यु-रंग हो यथा
 स-धर्म-नीहार सुरैर-चाप है,
 दिग्गज होके निर नो हर्षः हर्षैः
 वारण हो न तप-संश्रमैः ।

उसी घड़ी एक उरभ्र-वृन्द ले
 अजाप आके निकला अरण्यसे,
 विलोकते ही गत-संज्ञ देवको
 समीप आया अवलोकता हुआ ।

अचेत थे, लोचन थे मुँदे हुए,
 बने महा पांडुर दन्त-वास भी,
 प्रचंड था आतप, किन्तु देहपै
 न था कहीं स्वेद, न रेणु धूलिके ।

तुरन्त ले पल्लव एक वृक्षसे
 बना लिया छत्र उरभ्र-पालने,
 वितान-सा तान दिया शकेशकी
 महाकृशा आतप-दग्ध देहपै ।

कदम्ब-शाखा पनपी निमेषमें
 यथा नया जीवन पा हरी हुई,
 समीरसे झोल उठी तुरन्त ही
 हिली महा सौख्यद ताल-वृन्त-सी ।

हुए जभी स्वस्थ, उठे विलोकते,
 समक्ष देखा उस भेष-पालको,
 महा पिपासू वह थे, कहा, “सखे,
 तुरन्त दे भाजन दुग्ध-पूर्ण द ।”

परन्तु झोला वह, “हे कृपानिधे,
 मरान अस्पृश्य, निश्चल मृत हैं
 अर्धेय हैं पात्र अपात्रका, प्रभो,
 कृपात्र हैं श्याम, कृपात्र मरत हैं ।”

सुना जभी वाक्य. जगन्निवासने
 कहा, “ न ऐसा कह तू, स्व-पात्र दे,
 वने कहीं जो सम-दृष्टि तू, सखे,
 गवाशमें ब्राह्मणमें न भेद है ।

“ न रक्तमें वर्ण-विभेद है, सखे,
 न अश्रु होते बहु जाति-पाँतिके,
 समस्त भू-मंडलमें विलोक तू
 समान-सू मानव-जाति एक है ।

“ विलोक तू, भाल त्रिपुंड-हीन है,
 वैधी नहीं है कटिमें कृपाण भी,
 तुला तथा पोटलिका न पास है,
 न विप्र हूँ, क्षत्रिय हूँ न वैश्य हूँ ।

“ अतः मुझे संप्रति शूद्र मान तू,
 निकृष्ट हूँ मैं तव जाति-बंधु-सा
 वयस्य, दे दे द्रुत दुग्ध-पात्र तू,
 पिपासुको इष्ट पयःप्रदान है । ”

शकेशको भाजन मेघ-पायनं
 दिया, पिया श्रीर हृष्ट प्रमत्त वे;
 तुग्न्न आया ब्रह्म अंग-अंगमें
 समेत-आशीष विदा किया उसे ।

मन्दाक्रान्ता

पति ही वे पथ. वन सुखी, स्वस्थतामें विगत,
 आहं रागी गहन-पथमें गीति-पूणा मनोआ,
 गाती-गाती मुदित निकली मार्गमें देवदासी,
 जो जाती थी नृपति-गृहको भगव्यचाग गाने ।

सुना जर्मी वाक्य जगन्निवासने
 कहा, “ न ऐसा कह तू, स्व-पात्र दे,
 बने कहीं जो सम-दृष्टि तू, सखे,
 गवाशमें ब्राह्मणमें न भेद है ।

“ न रक्तमें वर्ण-विभेद है, सखे,
 न अश्रु होते ब्रह्म जाति-पाँतिके,
 समस्त भू-मंडलमें विलोक तू
 समान-सू मानव-जाति एक है ।

“ विलोक तू, भाल त्रिपुंड-हीन है,
 बँधी नहीं है कटिमें कृपाण भी,
 तुला तथा पोटलिका न पास है,
 न विप्र हूँ, क्षत्रिय हूँ न वैश्य हूँ ।

“ अतः मुझे संप्रति शूद्र मान तू,
 निकृष्ट हूँ मैं तत्र जाति-बंधु-सा
 वयस्य, दे दे द्रुत दुग्ध-पात्र तू,
 पिपासुको इष्ट पयःप्रदान है । ”

शकेशको भाजन मेष-पालने
 दिया, पिया क्षीर हुए प्रसन्न वे;
 तुरन्त आया बल अंग-अंगमें
 स्रमेत-आशीष विदा किया उसे ।

मन्दाक्रान्ता

पीते ही वे पय, वन सुखी, स्वस्थतासे विराजे,
 आई वाणी गहन-पथसे गीति-पूर्णा मनोज्ञा,
 गाती-गाती मुदित निकलीं मार्गसे देवदासी,
 जो जाती थीं नृपति-गृहको मंगलाचार गाने ।

प्रतिष्ठिता थी वह सर्व ग्राममें
 गुणान्विता, आदर-गौरवान्विता,
 परन्तु था शोक उसे अजस्र ही
 कि गेहका आँगन पुत्र-शून्य था ।

रही मनाती वह देवता सभी
 दिनेश-लक्ष्मी-शिव पूजती हुई,
 प्रसूनसे, अक्षत-धूप-दीपसे
 सदा सपर्या सजती स-काम थी ।

अरण्यमें जाकर एक वार सो
 विनीत हो सादर मानने लगी—
 “ सुपुत्र हो जो वनदेव, तो प्रभो,
 सहर्ष क्षीरोदन-दान में करूँ । ”

अपत्य कालान्तरमें मिला उसे,
 महा सुखी पूरित-कामना हुई,
 चन्द्री मुजाता नव-जात पुत्र ले
 स-हर्ष क्षीरोदन ले अण्यको ।

यदा पट्टेची बटके समापमें
 स-देह धेंटे ' वनदेव ' को लम्बा,
 प्रशान्त वदामन थे विराजते
 प्रत्यम्ब दोनों भुज जानुपे धरे ।

विन्दोचनेमें अति दिव्य उद्योति थी,
 विशाल थी पुण्य-प्रभा लयाटपे,
 प्रसन्न था अन्नन, मूर्ति मीम्व थी,
 समुच्चयला देह दुपाग-श्वेत थी ।

शकेशको देख अतोत्र भक्तिले
 सदेह जाना वनदेव ही उन्हें,
 सराहती स्वीय सुभाग्य सुन्दरी
 गई सुजाता कैंपती सनीपमें ।

स-पुत्र वैठी युग हाथ जोड़के
 शकेशसे यों कहने लगी सती—
 “ अरण्यके रक्षक, आज आपने
 दिया मुझे दर्शन, की बड़ी कृपा ।

“ प्रभो, पकाया भवदीय भोगको
 सुनिष्ट क्षीरोदन गंध-युक्त है,
 अकिंचनाके यह पत्र-पुष्प ले
 उसे कृपासे कृत-कृत्य काजिए । ”

बड़ा दिया स्वर्ण-शराव सामने
 बड़ा दिया चन्दन-पुष्प सांसपै,
 कुलंगनासे कुल भी कहे दिना,
 शकेश भी भोजन-लीन हो गये ।

बना हुआ पायस स्वादु-युक्त था,
 शकेश खाके बल-युक्त यों हुए
 नितान्त भूले उपवास-काल वे,
 सुधा किये जो दत्त स्वत हो गये ।

नरस्थलीमें उड़ते विहंगको
 यथा कही सागर-तीर आ मिले,
 मिले पुनर्जीवन-सा पुनः उसे
 वलित हों पक्ष, प्रमत्त विल हो ।

तथैव पा पायसको सुखी हूए,
 तुरन्त आया बल अंग-अंगमें,
 जगी सु-आशा मनमें उपा-समा
 सरोज-सा आनन कान्त हो उठा ।

स-हर्ष पूछा, “ अगि चारुलोनने,
 बल-प्रदा हे यह वस्तु कौन-सी,
 न याचना की तुझसे, परन्तु क्यों
 स-मोद लाई यह भोज्य सामने ? ”

कहा, “ प्रभो, पायस स्वादु-युक्त हे,
 वसा हुआ केसर-तेजपत्रका,
 स-हर्ष लाई भवदीय हेतु ही
 वड़ी कृपा की सुत-दान जो दिया । ”

त्रिलोक-उद्धारक शाक्यदेवने,
 अपत्यके ऊपर हाथ फेरते,
 कहा, “ बड़े, हो सुत दीर्घ आयुका,
 सदा रहे जीवन सौख्य-पूर्ण ही ।

“ सुदेवि, तूने अति प्रेम-भावसे
 प्रदान क्षीरोदन जो किया अभी,
 हुआ मुझे द्वैध प्रमोद देखके,
 मिला तुझे पुत्र, प्रसन्न तू हुई ।

“ न देव, साधारण एक जीव हूँ,
 दरिद्र हूँ, राजकुमार था कभी;
 परन्तु इच्छा यह है कि बोध दूँ
 तमोगुणाक्रान्त समस्त विश्वको ।





फणी उठाके फन नाचने लगा,
 कपोतने कूजन भोगपै किया,
 महीरुहोंपै कपि-संग खेलती
 प्रसन्न थी चंचल वृक्षशायिका ।

तुरन्त छोड़ा निज भक्ष्य श्येनने,
 दुरन्त आतापि निरामिषा हुई,
 अरण्यमें कोकिल कूजने लगे,
 कड़ा खगोंका स्वर एक-साथ ही—

शिखरिणी

“ सदा सच्चे साथी सकल जगके एक तुम हो,
 तुम्हींको है, स्वामिन्, सुकर भव-उद्धार करना,
 तुम्हींने जीता है भव-भय तथा क्रोध, मद भी,
 करो रक्षा भूकी, स-पशु-खग-शाखी मनुजकी ।

“ धरा पापोंसे है अब दब रही घोर दुःखमें,
 भरोमा है भारी निग्विद महिकी, शक्त तुम हो,
 तुम्हारी इच्छा है सकल जन मद्दर्शन-रत हो,
 तमिन्का आई क्या जनन करने नरक-राजके । ”

वसन्तविरल

—संशोधकं निकट जायत नाथ देते,
 धे ध्यानमें जनन मरुति-भोजके से,
 ऐसा मद्दत लख जायत-पथावरोध,
 आया जनन नरक-राजके से ।

यही महावृक्ष सुदीर्घ-काय है,
 चिरायु है, जीवन एक कल्प लौं,
 न शुष्क होता, रहता हरा-भरा,
 मुकुन्दका आश्रय एकमात्र है ।

युगान्तमें स्वीय करारविन्दसे,
 स-हर्ष लेके चरंगारविन्दको,
 निवेश दे मंजु मुखारविन्दमें,
 शयान होते अरविन्द-नाभ हैं ।

चले उसी पादप ओर आप भी,
 त्रिलोकमें मंगल-गान हो उठा,
 विलोक आता अधिराज विश्वका
 हुए महाहर्षित वृक्ष-जीव भी ।

मराल बोले, झख भी सुखी हुए,
 कुरंगके वृन्द अभीत हो गये,
 प्रसूनकी राशि बिछी सुमार्गमें,
 हुई सपर्या-रत सर्वमेदिनी ।

वितान-सा था तरुका तना हुआ,
 विरे हुए थे वन अंतरिक्षमें,
 सरोजका सौरभ ले तडागसे
 चला महामंथर गंध-वाह भी ।

विरोधकी वृत्ति विहाय शाश्वती
 कुरंग, पंचास्य, वराह, व्याघ्र भी,
 खड़े हुए देख रहे स-मोद थे
 शकेश ज्योंही बटके तले चले ।

फणी उठाके फन नाचने लगा,
 कपोतने कूजन भोगपै किया,
 महीरुहोंपै कपि-संग खेलती
 प्रसन्न थी चंचल वृक्षशायिका ।

दुरन्त छोड़ा निज भक्ष्य स्येनने,
 दुरन्त आतापि निरामिषा हुई,
 अरण्यमें कोकिल कूजने लगे,
 कड़ा खगोंका स्वर एक-साथ ही—

शिखरिणी

“ सदा सच्चे साथी सकल जगके एक तुम हो,
 तुम्हींको है, स्वामिन्, सुकर भव-उद्धार करना,
 तुम्हींने जीता है भव-भय तथा शोध, मद भी,
 करो रक्षा भूकों, स-पशु-खग-शाखी ननुजकी ।

“ धरा पापोंसे है अब दब रहीं घोर दुखसे,
 भरोसा है भारी निखिल नहिंको, शक्त तुम हो,
 तुम्हारी इच्छा है सकल जन सद्दर्शन-रत हों,
 तमिला आई क्या जनन करने नव्य रविको ? ”

वतन्ततिलका

न्यप्रोधके निकट जाकर नाथ बैठे,
 थे ध्यानमें निरत संसृति-मुक्तिके वे,
 ऐसा मुहूर्त लख सिद्धि-पथावरोधी,
 आया अनंग सँग लेकर स्वीप सेना ।

आलिंगिता वन गई तरुसे लताएँ,
 आनन्दमें लिपट सिन्धु गये तटीसे,
 कासारमें उमड़के सरसी समाई,
 संसारमें मदन-शासन हो रहा था ।

योगी-विरक्त-मुनि-मानस-क्षोभकारी,
 कंदर्प दर्प-युत हो उस काल आया,
 तूणीरसे विशिख एक जमी निकाला,
 आकृष्ट चाप करके विहँसा शिवारी ।

भ्रू-भंग-युक्त कर-चालन-शील वामा
 गाने लगीं मधुर गायन सौख्यकारी,
 हो मंत्र-मुग्ध रजनी रुक-सी गई यों;
 तारे, सुधा-किरण भी स्थित हो गये थे ।

था देख देख उनको यह भास होता
 श्री-सार-युक्त वस हास-विलास ही हैं,
 त्रैलोक्यका अमृत-सिन्धु भरा हुआ है
 सीमंतिनी-स-मद-नेत्र-कटाक्षमें ही ।

पांता न जो अधर-पल्लव कामिनीके,
 भ्रू-भंगिमा न लखता अति मोदसे जो,
 आगुल्फ केश लख जो न स-काम होता,
 सो उक्ष निर्वृषण, ह्रीत्र दुलाप ही है ।

नारी अनूप बृहन्मायुधकी प्रिया है,
 संपत्तिकी प्रणयिनी, सुभगा, सु-नेत्रा,
 जो मूर्ख छोड़ इसको वनवास लेते,
 मुंडी, वुरूप वन वे फिरते अकेले ।

शार्दूलविक्रीडित

बोले किन्तु, “ अये, महा छल-परे, तू भाग जा, भाग जा,
गोपाका मृदु वेष जो न धरती, होता महा अन्यथा,
हे हे काम स्वरूपिणी, स्थगित हो, तू जा यहाँसे अभी,
हा, दुर्बुद्धिमती, तुझे निरखके आती दया ही मुझे । ”

वंशस्य

चला महावात, तमिस्र हो गया,
अहार्य डोले, हिल मेदिनी उठी,
पयोदने मूसलधार छोड़ दी,
स-घोष सौदामिनि दीप्त हो उठी ।

दुरन्त उल्का गिरने लगी तभी,
महान चीत्कार हुआ दिगन्तमें,
प्रकम्पमाना वन रोदसी गई,
अनी हुई प्रेरित प्रेत-लोककी ।

परन्तु सिद्धार्थ अ-कंप ही रहे,
डिगे न डोले, दृढ़ ही बने रहे,
महा अहिंसा-मय सत्य-धर्मका
सु-पाठ सारे जगको पढ़ा दिया ।

स-कंप बोधि-द्रुम भी हुआ नहीं,
न मूळ छोड़ी उस नैश शान्तिने,
न पल्लवोंसे कण ओसके गिरे,
खड़ा रहा पादप विन्न-वातमें ।

घंटे सभी दृश्य ब्रह्मिःप्रकारमे,
शकेशने या अनुभूत ही किये,
रहस्य तो केवल जानना ब्रह्मी
किया अनंगी जिसने अनंगको ।

लखी अनी संभ्रम-युक्त भागती
प्रगाढ़ ध्यानस्थ शकेश हो गये,
विचार देखी, गति जीव-जन्तुकी,
तुरन्त पूर्वस्मृति हो गई उन्हें ।

तदा विलोका क्रम पूर्वजन्मका
उन्हें हुआ ज्ञात रहस्य कर्मका,
अतीत-नैमित्तिक वर्तमान है,
भविष्य भी है फल भूत-व्रंजका ।

पुनः विलोका कित्त भौंति जीवके
समस्त संस्कार अखंडनीय हैं,
सदा इसी कारणसे नृ-लोकमें
विधान होते बहु जन्म-जन्मके ।

तुरन्त ही आश्रय-ज्ञान हो गया,
लखी सभी तांस्थिति लोक-लोककी,
अखंड ब्रह्मांड समंतभद्रको
सुदृश्य, हस्तामलक-स्वरूप था ।

तदा विलोका निज दिव्य दृष्टिसे
अमन्य आदिपति शकेश कोममें,
बंध हुए जो अमनस्य मगमें
समस्त संवर्धित हैं अत्र ।



शाईलविक्रीडित

पाई संलृतिने मनोजजितसे निर्वाणकी संपदा,
 प्राचीने उदिता उपा-छवि हुई, फैली प्रभा भूनिपै,
 आया वासर दिव्य, सत्य-रविने मेटी मृदा चामिनी,
 मानों श्रीभगवानकी विजयकी थी घोषणा हो रही ।

रेखा जो धुंधली दिगन्तपर थी, सो रक्त होने लगी,
 दोना थी तमसावृता गगनमें, सो भी अदृश्या हुई,
 इन्ना निध्रम शुक्र व्योम-तलमें, भूपै प्रभा छा गई,
 क्या ही पुण्य-प्रभात दिश्व-तलमें फैला महज्ज्योतिसे ।

पाई द्वाधिति मेरुने प्रथम ही, नाना स्वयंको हृती,
 शुभ्रा ज्योति-किरीट-मंडित-शिखा थी राजिती पूर्वमें;
 प्रातः वायु ब्रह्म सुगंध-युत ही, ले मन्दता दौत्य भी,
 फले पुष्प, उठे शिखीसुग्ग, चले सानन्द गजैर्द्वै ।

जो कूर्दादर्ये पही रजनिमें थी अंग मो भी कर्ण,
 फैली ज्योति प्रभातकी लक्ष्मिदे आया बनी चामिनी;
 हां हेमाभ अलापमान बलने थे तापों, हृत्त भी,
 ज्योतिर्लुक्त हुई सुगम महनरी, शिखीकी कदर ।

यह निदेश सुना जन-यूथने
 चरणमें शरणागत हो गया,
 प्रभु गये सत्रको उपदेश दे
 निकट ही 'ऋषि-पत्तन'-ग्रामको ।

रजनि एक विता कर शान्तिसे
 नगरके नरको उपदेश दे,
 प्रभु यदा पहुँचे 'मृगदाव'में
 निरख धन्य हुए सत्र मांगधी ।

निकाळते जब याचनके लिए
 बिनयसे युग हाथ पसारके,
 जिस गली चालते मचता वही
 रख यही, " यह लो, यह लो, प्रभो ! "

तनुज लक्षर सुत्रवणी चली;
 अग्नि लाल तथागत-पार्श्व
 चरणकी रज पाकर नगियों
 मुद्रित थी लक्ष भौंभि मन्त्रमयी ।

समय पावसका लखके, वहीं
 ठहर जाय गये द्विज-संग ही,
 निरखते उसके जप-यागको
 निवसते बसु याम शकेश थे ।

द्विज वहाँपर आतप-शीतमें
 निवसता, करता व्रत-योग था
 जप तथा उपवास-निमग्न हो
 वह तपोधन ध्यान-प्रसक्त था ।

रुग्ण समीप मुद्रा जुगने रहे,
 उचरते किर्त्तनी तन-शायिका,
 द्विज अभेद-समाधि-निमग्न हो
 न लजना वहिंस्य कदापि था ।

दिवसमें, वह आतप शीतमें,
 वह कभी कभी वह शर-भय,
 वह कभी निज उपास-निर्वाण हो
 न लजना वहिंस्य कदापि था ।

समय पावसका लड़के, वहाँ
 ठहर जान गये द्विज-संग ही,
 निरखते उसके लज-योगको
 निरसते बहु पात शकते थे ।

द्विज वहाँपर आत्म-शीतने
 निरसता, करता व्रत-योग था
 जब तथा उपवास-निमग्न हो
 वह तपोधन ध्यान-असक्त था ।

खग सनाँप मुझ जुगते रहे,
 जवमै निरखते तह-शापिका,
 द्विज जनेद-सनापि-निमग्न हो
 न देखता नहिरेण कदापि था ।

दिवसने, बहु जातम धोरने,
 जब कानी बतता बत शक-सा,
 वह यती निज ध्यान-निर्लाल हो
 न देखता खिन्ना कति चंडता ।

कब गया दिन, यानिनि का गड़े,
 कब हुआ ख जन्तु-क-पूयका,
 कब लगे तहमै खग बोलने,
 वह यती इससे अनभिह था ।

खजनिने निकले बत-बहु नाँ
 छिन्न भैरव-नाद करे वहाँ,
 तिनिर-भूरी यथा नरने ईहें
 खल-कादिक भूरी कडके हो ।

मनोर वाक्यका लक्षण, वही
 टकर थाप गये त्रिज-रंग ही,
 निम्नमें लसके उप-यागको
 निवसते बहु यान शक्येन थे ।

त्रिज वहीपर आनप-दीतमें
 निवसता, करता व्रत-योग था
 जप तथा उपवास-निमग्न हो
 वह तपोधन ध्यान-प्रसक्त था ।

खग समीप मुद्रा चुगते रहे,
 जघनपै फिरती तरु-शापिका,
 द्विज अभेय-समाधि-निमग्न हो
 न लखता बहिरंग कदापि था ।

दिवसमें, बहु आतप घोरमें,
 जत्र कभी वनता वन दाव-स्ता,
 वह यती निज ध्यान-निलीन हो
 न लखता रविकी अति चंडता ।

कत्र गया दिन, यानिनि जा गई,
 कत्र हुआ रव जन्तुक-यूथका,
 कत्र लगे तरुपै खग झोलने,
 वह यती इतसे अनभिज्ञ था ।

रजनिमें निकले वन-जन्तु भी
 विचर नैरव-नाद करें वही,
 तिनिर-पूर्ण यथा ननने धँसे
 खल-मलादिक पूर्ण अशंक हो ।

समय पावनका लम्बके, वही
 छतर आप गये द्विज-संग ही,
 निरगत उमके जप-यागको
 निवसते वसु याम शकेश थे ।

द्विज वहाँपर आतप-शीतमें
 निवसता, करता व्रत-योग था
 जप तथा उपवास-निमग्न हो
 वह तपोधन ध्यान-प्रसक्त था ।

खग समीप मुदा चुगते रहे,
 जघनपै फिरती तरु-शायिका,
 द्विज अभेद्य-समाधि-निमग्न हो
 न लखता वहिरंग कदापि था ।

दिवसमें, वह आतप घोरमें,
 जब कभी वनता वन दाव-सा,
 वह यती निज ध्यान-निलीन हो
 न लखता रविकी अति चंडता ।

कत्र गया दिन, यामिनि आ गई,
 कत्र हुआ रव जम्बुक-यूथका,
 कत्र लगे तरुपै खग बोलने,
 वह यती इससे अनभिज्ञ था ।

रजनिमें निकलें वन-जन्तु भी
 विचर भैरव-नाद करें वही,
 तिमिर-पूर्ण यथा मनमें धँसें
 खल-मलादिक पूर्ण अशंक हो ।



“ मगय पाकर कर्म-विपाकर्म
 सुखदुःखादिक भी मिटने सभी,
 कथित है निगमागममें यही,
 सुख, मुक्ति सदा अविनाशिनी ।

“ पर, तजो निगमागमकी कथा,
 द्विज, निसर्ग लखो यह सामने,
 यह न केवल है उपभोग्य ही
 अति सुधी उपदेशक भी यही ।

“ निराखिए, यह पुष्प प्रसन्न हैं,
 भ्रमर हैं इनपै मँड़रा रहे,
 अरुणके पद छूकर जागते
 मुदित सो रहते लख यामिनी ।

“ भ्रमरको मकरन्द, दिगन्तको
 सुरभि देकर हैं यश छटते,
 स-मुद हैं चढ़ते हरि-शांसपै
 पर प्रसून न भौंह सिकोड़ते ।

“ यह लखो वनमें तरु तालके
 अति विशाल समुन्नत-भाल हैं,
 पवनका मद पीकर व्योममें
 स-मुद हैं सुख-संयुत झूमते ।

“ यह सभी तरु-गुल्म-लता, सखे,
 परम तुष्ट बने तन-पुष्ट हैं,
 यह विनोदमयी तरु-जीवनी
 वन रही किस हेतु प्रहेलिका ?

शयन विप्र कभी करता न था,
 यदि कभी करता, क्षण एक ही,
 अरुणके पहले वह जागता
 अति कठोर रही तप-साधना ।

निरख तापसकी तप-योजना,
 विपथ देख उसे श्रुति-मार्गसे,
 लख महा व्यभिचार विवेकका
 निगम-पालकसे न रहा गया ।

वचन बोल उठे प्रभु विप्रसे—
 “ तुम सखे, यह क्यों दुख झेलते ?
 जब न है लघु जीवन-क्लेश ही
 स्व-तन क्यों करते फिर दग्ध हो ?

“ निगमका पथ, आगम-मार्ग भी,
 कठिन है अति, मैं यह मानता,
 पर लखो यह देह मनुष्यकी
 प्रमुख साधन है सत्र धर्मका ।

“ यदि कहींपर स्वर्ग-निकेत है,
 इतर है जनके तनसे नहीं,
 यदि उसे तुम भोग सको, सखे,
 निकट तो फिर मुक्ति अवश्य है ।

“ निगम हैं कहते सुख स्वर्ग है,
 नरक दुःख यही मत शास्त्रका,
 क्रम परन्तु सदा सुख-दुःखका
 न रुकता, चलता रहता, सखे,

“ समस्त राजा कर्म-विदासकं
 सुखदुःखानिक भी मिटाने सभी,
 कथित है निगमागमों कयी,
 सुख, मुक्ति तथा अविनाशिता ।

“ पर, तजो निगमागमकों कथा,
 द्विज, निसर्ग लखो यह सागने,
 यह न केवल है उपभोग्य ही
 अति सुधी उपदेशक भी यही ।

“ निराश्रित, यह पुष्प प्रसन्न ही,
 अमर ही इनपै मँझा रहे,
 अरण्यके पद छूकर जागते
 मुदित तो रहते लख यामिनी ।

“ अमरको नकरन्द, दिगन्तको
 सुरभि देकर है यत्र दृष्टते,
 सन्देह है चढ़ने हरि-शोसपै
 पर प्रमत्त न भौह निकोडने ।

“ यह कबो अन्तरे मन भावके
 अन्ते विनाश सुखकर्म-भक्त है,
 रवनका नद रोकर व्योमने
 सन्देह है सुख-संयुक्त जमाने ।

“ यह समी कर-मुक्त-जन, मांसे,
 रग्न लुट बने मन-मुष्ट हैं,
 यह विनेदन्तों मन-होवनों

कम ही विनाश के लोडिका ।

“ विहग जो उनपै कल कूजते
 वह कभी निजको न विनाशते,
 निरखिए, अति मंजु प्रभातमें
 परम मुग्ध स-हास निसर्ग है ।

“ दुरित-दग्ध मनुष्य-समाजके
 यह सभी उपदेशक हैं, सखे,
 यजन-याजन एक यही यहाँ
 प्रकृति-पाठ तपोधन जो पढ़ें ।

“ द्विज पुनीत महामति आप हैं,
 यदि कहीं जग-संग्रह-भाव हो,
 मनुज-वृन्द गहें पथ धर्मका,
 सकल संसृति मुक्ति-निधान हो ।

“ विदित शिक्षक आप त्रिवर्गके
 मनुज कौन तुम्हें फिर ज्ञान दे,
 इस लिए यह ग्रन्थ निसर्गका
 प्रकट है, कृपया पढ़ लीजिए ।

शार्दूलविकीर्णित

“ पावें ब्राह्मण बुद्धि सत्य-तपसे रक्षा करें जातिकी,
 सीखें पाठ सनातनी प्रकृतिसे त्यागें मृषा साधना,
 सारे भूतलमें चरित्र-व्रतसे जो अग्रगामी बनें,
 तो हिंसा मिट जाय एक क्षणमें निर्वाण-संसिद्धि हो ।”

बंजरप

उसी घड़ी देस पड़ी दिगन्तमें
 वनान्तसे उथित धूमकी ध्वजा,
 अनिष्टका आगम जानके उसे
 स-तर्क सारे खग-वृन्द हो गये ।

पुनः हुआ शब्द सुदूर प्रान्तमें
 महान अरपष्ट परन्तु भीम जो,
 विपत्तिका अग्रग मानके उसे
 स-शंक सारे पशु-वृन्द हो गये ।

प्रचंड दावानल क्या अरण्यमें
 लगा हुआ है, यह तर्क हो उठा;
 कि युद्ध छेड़ा वनके समीप ही
 अरातिसे राजगृहाधिराजने ?

विलोकनेको वह भीम धूमिका
 चले यती साथ शकाधिनाथके,
 समीपमें जाकर जो लखा उसे
 स-वत्स भेष-व्रज नीयमान था ।

पुनः पुनः आजकको हँकारता,
 चला अजा-जीव स-वेग जा रहा,
 समूहको ले वह छाग-भेषके
 चला वहीं काननके समीपसे ।

बटोरता छाग, उरभ्र हाँकता,
 खदेड़ता वृन्द-प्रहारसे अजा,
 महान प्रार्माण कुशब्द बोलता
 चला अजापाल उसी घड़ी वहाँ ।

विलोक छागी युग-शाव-संयुता,
 विपन्न थी जो निज-पुत्र-व्याधिसे
 तुरन्त आगे बढ़के लखा, अहो !
 शकेशने आजक-मेष-पुंजमें ।

प्रहारसे शावक पंगु हो रहा,
 गिरा रहा शोणित एक पाँवसे,
 स-दुःख धामी गतिसे अधीर हो
 अजाज पीछे छुटता हुआ चला ।

स्व-पुत्रको ताड़ित दंड-वातसे
 विलोक होती जननी अधीर थी,
 अभीत पीछे रहना असाध्य था,
 प्रसह्य आगे बढ़ना अशक्य था ।

विलोकते ही प्रभुने अधीर हो
 उठा लिया शावक शीघ्र अंकमें,
 उसे लगाके निज कंठमें तदा
 कहा, “ सुने तू अयि, मंजु ऊर्णदे,

“ चले जहाँ तू शिशु ले चलूँ वहीं,
 न भीत हो देख मदीय कर्म तू,
 सदैव मेरा प्रिय कार्य है कि मैं
 हरा करूँ संकट जीव-जन्तुके । ”

शकेश आगे बढ़ छाग-पालसे
 स-प्रेम यों सत्वर पृथने लगे,
 “ सखे, कहाँको तुम जा रहे अभी
 प्रचंड है आतप, तप्त भूमि है । ”

निराश्रिता होकर दीन कामिनी
 हताश ज्यों ही वह दूबने चली,
 तभी नदीके तटमें सुयोगसे
 अनाथके नाथ शकेशको लखा ।

विलोकते ही प्रभुको अनाथिनी
 पछाड़ खाके गिर भूमिपै पड़ी,
 अपत्यका तो शव दारु-खंड-सा
 गिरा अहो ! श्रीचरणारविन्दपै ।

अपत्य ज्यों ही पद-पद्मपै गिरा
 तुरन्त संचेष्टित-गात्र हो उठा,
 शकेशको देख हँसा सचेत हो,
 विलोक माता-मुख रो पड़ा तदा ।

अपत्यको जीवित देख प्राण ले
 गिरी पदोंपै विधवा शकेशके,
 सुवृत्त सारा पुरमें फिरा तभी
 विलोकनेको जनता चली सभी ।

स-हर्ष संजीवन-कार्य देखके
 दिनेश अस्ताचल-धामको चले,
 शकेश भी आजक-पाल-संगमें
 चले मुदा राजगृहाख्य ग्रामको ।

स राग हो अंतिम-रश्मि सूर्य भी
 लगा छिपाने निजको दिगन्तमें,
 प्रगाढ़ छाया प्रति-धामपै पड़ी
 स्व-गेह प्रत्यागत गोप भी हुए ।

सन्मग्न देखा जब पौर-वृन्दने
 हृदये लगामे पथमे शकेशके,
 प्रविष्ट ज्यों ही वा सामने हुए
 शिङ्ग बोट, विहसे प्रदीप भी ।

तुरन्त रोका घन लौहकारने,
 रुके सभी वाद-विवाद पण्यके,
 विही हुई थी पथ-मध्य वस्तुएँ
 सभी हट्टा ली त पण्य-पौरने ।

बने यहाँ निष्क्रिय तन्तुवाय, तो
 हुए वहाँ लेखक त्यक्त-लेखनी,
 शकेशको देख प्रसन्न नारियाँ
 स-तर्क-सी होकर पूछने लगीं—

“ कहो, सखी, सज्जन कौन जा रहे,
 लिये हुए हैं बलि-डाग अंकमें,
 अनंगको सांग बना रही लखो
 मनोरमा कान्ति मुखारविन्दकी ।

“ लखो इन्हें, सुन्दर अंग-अंग हैं,
 प्रसन्न हैं, कोमल हैं, स-तेज हैं,
 प्रफुल्ल हैं लोचन पुंडरीक-से,
 शशांक-सा आनन कान्ति-पूर्ण है ।

“ विस्तार-से, खंजन-से, कुरंग-से,
 सरोज-से, लोचन पा गये कहाँ ?
 विलोकिए तो इनकी तन-प्रभा,
 अनंग आया बनके सितांग ज्यों । ”

मन्मथ देखा वह पैर-कुन्दने
 हट्टे मगमिं पथमिं कलकले,
 प्रविष्ट ज्यों ही वह मगमिं हट्टे,
 विहंग बोले, विहिले प्रदीप भी ।

सुरन्त रोका वन लौहकारिने,
 रुके सभी बाढ़-विवाद कपके,
 विहिले हई थी पथ-मगमिं वस्तुमें,
 सभी हटा ली त पथ-वीरने ।

वने यहाँ निश्चित तन्तुवाय, तो
 हुए यहाँ लेखक त्यक्त-लेखनी,
 शकेशको देख प्रसन्न नारियाँ
 स-तर्क-सी होकर पूछने लगीं—

“ कहो, सखी, सज्जन कौन जा रहे,
 लिये हुए हैं बलि-छाग अंकमें,
 अनंगको सांग बना रहा लखो
 मनोरमा कान्ति मुखारविन्दकी ।

“ लखो इन्हें, सुन्दर अंग-अंग हैं,
 प्रसन्न हैं, कोमल हैं, स-तेज हैं,
 प्रफुल्ल हैं लोचन पुंडरीक-से,
 शशांक-सा आनन कान्ति-पूर्ण है ।

“ वितार-से, खंजन-से, कुरंग-से,
 सरोज-से, लोचन पा गये कहाँ ?
 विलोकिए तो इनकी तन-प्रभा,
 अनंग आया वनके सितांग ज्यों । ”

- “ अशक्तके ही सम शक्तपै, सखे,
जमा सदासे जिसका प्रभाव है,
वही दया संसृति-मोक्ष-दायिनी
प्रसिद्ध है, सिद्ध करो न अन्यथा ।
- “ अशक्तके ही प्रति शक्तका दया
महान कल्याणकारी विभूति है,
वना रही है कुछ कोमला यही
महान घोरा गति जीव-लोककी ।
- “ दया विराजे यदि, भूप, चित्तमें
तुरन्त निःश्रेयस-सिद्धि प्राप्त हो,
कहा गया ईश्वर विद्भमें वही
महादयासागर-नामधेय जो ।
- “ महान वैषम्य विलोकिए, सखे,
मनुष्य हो निर्दय चाहते दया,
न जानते है सब जीव विद्भके
विहार-निद्रा-भयमें समान हैं ।
- “ मनुष्यकी भाँति समस्त जीव भी
फँसे हुए हैं दृढ़ कर्म-जालमें,
रहस्य-पूर्णा विनिगूढ़-अर्थिनी
यथैव है मृत्यु, तथैव जन्म भी ।
- “ न भोग हैं त्वाज्य, न कर्म हेय है,
विजेय निःश्रेयस है न घातसे,
न जीव है वय्य, न मृत्यु श्रेय है,
न प्रेय हिंसा, न विधेय पाप है ।

.

.

.



“ मृणालिनी मंत्रु मृग-पादया
 चतुर्दिशा है मगना धिरी छेई,
 कन्दु तेरा लख रूप-रंग रां
 ल-हृद देती रथिको श्वाश्यां ।

“ परन्तु तेरी छवि देग-देग में
 हुई विपला दृग-भार-नाहिनी,
 मिला कहॉते किस पुण्यसे तुझे
 अन्तु सिद्धार्थ-विद्योचनोपमा !

“ अन्तु, तेरा दग-ज्योप क्यों, प्रिये !
 म-शोषका कारण तो क्या सुने,
 विकार क्याया तुझमें विनेशका,
 विचार अथवा अथवा निनेशका ।

“ मृगादिनी मंडु सुवृत्त-मल्लवा
 चतुर्विंश है सवना विरो हुई,
 अन्ध तेरा कर रूप-रंग सो
 स-दृष्ट देता रथिको बधाइयो ।

“ परन्तु तेरी छवि देव-देव में
 हुई विपत्ता दुःख-भार-बाहिनी,
 निर्धा कहांसे किस दुःखसे हुई
 अन्ध सिद्धार्थ-विकोचतोम्ना !

“ अन्धक, तेरा दुःख-रोग क्यों, सिधे ?
 स्व-रोगका कारण सो क्या हुई,
 विद्याः क्याया हुआं निर्देयका,
 विद्याः आया अथवा निर्देयका ।

・
・
・

“ प्रभाव हैं अशु मुद्रातिरेकके,
 महान पीडा-मल एक मृत्यु ही,
 परन्तु आशा सहगामिनी बनी
 चला रही है इस भौतिके मुझे । ”

शांतिविक्रमिणी

आशा दिल-दिभासिनी, रंगमयी आदित्यकी रश्मि है,
 संसारोदधिकी सुसुष्ट तरणी, क्लेशोन्मत्त-सेवार्थिनी ।
 ऐसी एक अलाप जो न अलग देवी-मुनी ही गई,
 गोपाये, कल-कंदसे निकल यो सुजाय-सुजा इति ।

“ यदि न वा, रम व मकरन्दमे,
पर व्यथा सुत के कुछ खातसे,
अति, नदीय समस्त विद्योक्त व,
स्थल न है अनुमान-प्रमाणवा ।

“ कमल-केसरकी यह पंक्तिमा
मदना है मम पीत शरीरके,
पर यहाँ अति सुन्दर मद्यना,
कहि यहाँ विरमा मम मद्यकी ।

न मैं बनूँगी प्रिय-प्राप्ति-त्राधिका ।

“ अतः चली जा लुनती हुई कथा,
दयामयी तू अति-सौख्य-दायिनी,
बनी रहूँगी कब लौं, मुझे बता,
शकेश-प्रत्यागम-दत्त-मानसा ?

“ न प्यान आता उनको मदीय है ?
न धाम प्यारा अब क्यों रहा उन्हें ?
शकेशके स्वागतमें वृथा, सखी,
बिछा रही हूँ निज नेत्र-पाँवड़े । ”

“ बना चुकी मानस शिक्थ-तुल्य मैं,
शकेश होते फिर वज्र-तुल्य क्यों ?
स्वकीय सन्मूर्ति-समेत चित्तकी
चुरा चले चेतनता, कहाँ गये ?

“ अहर्निशा एक शकेशके बिना

“ सजे हुए साज-सिँगार आज तू
 कहाँ, नदी, वल्लभ-भेंटने चली,
 न है समीचीन कु-प्रश्न पूछना,
 न मैं बनूँगी प्रिय-प्राप्ति-वाधिका ।

“ अतः चली जा सुनती हुई कथा,
 दयामयी तू अति-सौख्य-दायिनी,
 बनी रहूँगी कव लौं, मुझे बता,
 शकेश-प्रत्यागम-दत्त-मानसा ?

“ न ध्यान आता उनको मदीय है ?
 न धाम प्यारा अब क्यों रहा उन्हें ?
 शकेशके स्वागतमें वृथा, सखी,
 बिछा रही हूँ निज नेत्र-पाँवड़े । ”

“ बना चुकी मानस शिक्थ-तुल्य मैं,
 शकेश होते फिर वज्र-तुल्य क्यों ?
 स्वकीय सन्मूर्ति-समेत चित्तकी
 चुरा चले चेतनता, कहाँ गये ?

“ अहर्निशा एक शकेशके बिना
 व्यतीत होता युग-तुल्य याम था,
 अजस्र थी मैं उनको विलोकती
 न देखते वे मम ओर आज हैं । ”

विलोचनोंमें उनकी सु-मूर्ति है,
 भरा उर्दीका अनुराग चित्तमें,
 परन्तु तो भी दृगको रुला चले,
 विमोह-प्याला मनको पिला चले ।

...

“ वाणीसे तू रहित खग है, क्या कहेगा-सुनेगा,
 ले जा मेरी लिखित दुखकी पत्रिका चोंचमें ही;
 जाके मेरे दयित-पदपै डालना नम्रतासे,
 श्रीमानोंसे विनय करना धर्म है आश्रितोंका ।

“ तू प्यारा था मम दयितको ध्यान होगा तुझे भी,
 नाराचोंसे व्यथित तुझको नाथने ही बचाया,
 तेरा त्राता अब न मुझको त्राण देता, सखे हे,
 झूलोंसे भी मृदुल मनके वज्र-से क्रूर होते ।

“ तू प्यारा था हृदय-धनको, वे मुझे चाहते थे,
 संबन्धी तू खग इसलिए मित्र मेरा पुराना;
 प्यारे पक्षी, मम हित सधे, पत्रिका ले वहाँ जा,
 भद्रोंके ही चरण रचते क्षेम हैं मेदिनीमें ।

“ मोती खाके सुहृद जब तू बोलता वर्णमाला
 शुभ्रा धारा-सदृश कइती शोभना मंजुवाणी,
 श्रोताओका हसित उमकी शुभ्रताको बढ़ाता,
 गौगंगोंकी मकड़ जगमे क्याति पाई गई है ।

“ इ सो प्राणी बिलग करता क्षीरको नीरको जो,
 तेरी वाणी अनृत-रहिता, युक्त है मन्थनामे,
 देवूँ कैसं मन प्रिय नहीं मानते बात तेरी,
 भ्रष्टा होनी अचिन्त नदा मन्थकानी जनोने ।

“ जाते जाते विपुल सरिता मार्गमें आ मिलेगी,
 होंगे पक्षी स-मुद कितने खेलते निर्झरोंमें,
 सीधे जाना, निरम रहना तू वहाँपै न प्यारे,
 ज्ञानी सारे विषय तजके ध्येय ही चाहते हैं ।

“ ज्यों ही ऊँचा उठकर, सखे, व्योममें जा उड़ेगा,
 देखेगा तू प्रतनु कुटिला रोहिणी मेखला-सी,
 शोभाशाली निरम छविको लौट आना न, प्यारे,
 वीरोंको हे उचित मरना, पाँव पीछे न देना ।

“ हंगोन्ती भी अवलि तुझको जो मिले रोदगीमें,
 तो तू, पक्षी, न रम रहना व्यर्थ पंचायतोंमें,
 सीधे जाना, मुकुल करना, शीघ्र देना मंदिगा,
 स-कार्यमें, विद्वग, बहूधा भिन्न आने पने हैं ।

“ यों ही, मेरे खग, निरखना चारुता वारिदोंकी,
जीमूतोंसे विलग रहना दूर ही दूर जाना,
जो जावेगा निकट उनके क्रौंच-सा ज्ञात होगा,
होते प्रायः भ्रमित लखके शुद्ध सादृश्य प्राणी ।

“ प्यारे, भूके निकट इतना आ न जाना कभी तू,
जो वाणोंसे वधिकगणके विद्ध हों पक्ष तेरे,
ऊँचे-नीचे, खग, न उड़ना, व्योमके मध्य जाना,
श्रेया भूमें सकल जनको मध्यमा वृत्ति ही है ।

“ मोती तेरे धवल गलमें बाँध दूँ पोटलीमें,
इच्छा हो तो स-मुद चुगना, साथ पाथेय ले जा,
पानी पीना पर न रुकके, नाथ देखे न जौ लौं,
सद्यः देता फल व्रत वही निर्जलीभूत जो हो ।

“ कासारोपै, गहन तरुपै, जो रुके हादिनीपै,
तो तू थोड़ा विरम वनिताको, सखे, शान्ति देना,
जायाको ले गमन करना छोड़ देना न यों ही,
स्वामीको है अनुचित महा त्यागना आश्रितोंको ।

“ जो तू देखे लुहद, झरते मार्गमें निर्झरोंको,
तो आँखोंमें त्वरित उनका चित्र भी खींच लेना,
आगे जाके मम दयितके आँसुओंको गिराना,
दाक्ष्योंसे क्या ! यदि न बनता कार्य हो इंगितोंसे ।

“ जो वृक्षोंपै विहग अपने कोटरोंमें बसे हों,
शिक्षा देना निकल कण ला शावकोंको खिलावें,
यों ही माता-तनुज-सुख है विघ्नमें वृद्धि पाता,
देखा जाती अमित महिमा स्नेहकी सर्वदा है ।

“ जाना, प्यारे, न उपवनमें युक्त आमोदसे जो,
 किजल्कोंमें भ्रमर रमते हों जहाँ मत्ततासे,
 उन्मत्तोंका जमघट कहीं, वन्धु, होता नहीं है,
 दो लड़कोंको गृह न मिळता एक ही कोपमें है ।

“ कुंजोंमें, हे विहंगवर, तू स्वप्नमें भी न जाना,
 वे प्राणीको व्यथित करते मारके शायकोंसे,
 मेरा प्याग रति तज तथा कामको छोड़ भागा,
 दृष्टातीता प्रकृति जनकी कामना-हीन होती ।

“ उषानोंमें नवक अन्वला झुलनी हों जहाँसे,
 होंगे ऐसे स्थलपर नहीं प्राणियोंके हनन,
 होंगे वादा वह न विनये संगमें केलियाँ हों,
 एकाकी ही भ्रमण करते 'एक' को रोपते हों ।

पयोद-रेखा सित-पीत-रक्तिमा
 स-भंगिमा पश्चिमके ललाटपरै
 दिगन्तमें जाग्रत स्वप्न-सी बन्दी,
 लसी क्षपान्नाटक-रंगभूमिमें ।

दिनान्तमें पंकज वन्द हो चले,
 मिलिन्द बन्दी कळ काँचमें हुए,
 बलाक तीरस्थ-अरण्य-वृक्षमें
 विद्योक्ते थे शुभ स्वप्न मीनके ।

सर्मार भी कानन-प्राप्तसे चला,
 सुगन्ध फैली रजनी-प्रकाशकी,
 प्रसन्न हो सुन्दर मन्द हो चली
 तरंग सोने नर-नीम-अंगमें ।

प्रदान्त हैं व्योम, सर्मारि शापत हैं,
 निगलान्ति दिग्गन्त बन्दी याम् ।

पयोद-रेखा सित-पीत-रक्तिमा
 स-भंगिमा पश्चिमके ललाटपै
 दिगन्तमें जाग्रत स्वप्न-सी बनी,
 लसी क्षण-नाटक-रंगभूमिमें ।

दिनान्तमें पंकज बन्द हो चले,
 मिलिन्द बन्दी कल कोयमें हुए,
 बलाक तीरस्थ-अरण्य-वृक्षमें
 विलोकते थे शुभ स्वप्न मनिके ।

सर्मार भी कानन-प्रान्तसे चला,
 सुगन्ध फाली रजनी-प्रकाशकी,
 प्रसन्न हो सखर मन्द ही चली
 तरंग सोने सुर-नील-अंघमें ।

“ प्रकाशसे मंडित नम्र मुंड है,
 प्रदीप्त है कान्ति मुखारविन्दपै,
 ललाट तेजोमय शान्ति-युक्त है,
 सन्राग हैं लोचन देव-देवके ।

“ यथा यथा वे फिर चक्र-चातसे
 मुद्रा मुनाते उपदेश लोकको,
 तथा तथा मानव शुष्क पर्जसे
 बने शकेशानुविधेयशील हैं ।

“ दिविष्ट-कान्तार अथार पृत भी
 न क्षीरिका याननके समान हैं;
 जहाँ महाधर्म-रहस्य-रूप थे
 अभी समारोह शिबोद-नाथ हैं ! ”

निमेषमें ही अनिमेष हो गये,
 खड़े रहे चित्रित चित्र-लेखसे,
 सुनी जमी व्याहति सुन्दरकी
 रही नहीं चंचल वृत्ति चित्तकी ।

दयामयी, क्षान्तिमयी, सुधामयी,
 महा पवित्रा गुरु ज्ञान-दायिनी,
 हुए सभी मूल, अहो ! यत्र सुनी
 प्रसन्न-नाभीर-गिरा शकेशकी ।

द्विरेण जैसे निज गेहको तजे
 चढे, पहुँचे, मरि-नीर सुख ही,
 परागका पान करे प्रकृत जो
 महान-आनन्द-निमग्न-दिन हो :

निर्वास हो यो मकरन्द-पानमें,
 तबो न से सादर से न-दोष ही,
 प्रमोदमें भूत सादर से ही
 अ-विनाश-मि-त न-दोष ही ।

“ सदैव स्वर्गादिपि जो गरीयसी,
त्रिलोककी संपत्तिसे महीयसी,
चरिष्ठ है आदर जन्म-धामका,
गरिष्ठ है गौरव मातृ-भूमिका ।

“ वृदेव ही हैं जननी तथा पिता,
न पुत्र चूकें निज धर्ममें कमी,
उपासनासे उनकी मनुष्यको
अवश्य निःश्रेयस-प्राप्ति शक्य है ।

“ स्व-धर्म-निष्ठा जिसमें अखंड हो
निदिष्ट-निर्वाण-निवेश है चली,
अवश्य ही पातक-पुंज-नाशमें
प्रवेश पाता नर पुण्य-धाममें ।

“ विस्तरा, दाक्षिण्य, दया, उदारता
समेत जो जीवन्मते दिये गये,
विलिखनीया उमकी छुर्गी है
प्रशंसनीया उमकी छुर्गी है ।

मुदित पौर-संभी रचने लगे
 भवन-द्वार अपार उमंगमें,
 सज उठे प्रिय-दर्शन मार्गमें
 सुगत-स्वागत-साज-समाज भी ।

तन गया पुर-दक्षिण-द्वारपै
 परम चित्र-विचित्र वितान भी,
 अवलियाँ गुण-विद्ध प्रसूनकी
 विलसतीं जिनमें अति मंजु थीं ।

स-घट-मंगल-द्रव्य-वितानमें
 विशद वंदनवार सजे गये,
 परम दिव्य सिंहासन भी लगा
 नृपति-नंदनके अभिषेकको ।

प्रचुर पातित पावन नीरसे
 नगरके पथ पंकिल हो गये,
 स-दल मंजरियाँ सहकारकी
 वसन-मंडप-मंडनशील थीं ।

लसित तोरणपै पवमानसे
 फहरता हरता मन केतु था,
 वसनमें जिसके विरचा गया
 सहित-स्वर्ण-वरंडक पुष्करी ।

वज रहे बहु डिंडिम झाल थे,
 मुमुखियाँ करतीं कल गान थीं,
 जन खड़े पुर-दक्षिण-द्वारपै
 नृपति-नंदन-स्वागतमें सभी ।

परम-हर्षित-चित्त यशोधरा
 चढ़ चली शिविकापर पुत्र ले,
 नगर-बाहर जाकर सुन्दरी
 रुक गई पति-स्वागतके लिए ।

नगरके नर-नारि प्रमोदमें
 सब समूह हुए पुर-द्वारपै
 जन अनेक चढ़े तरु-शृंगपै
 निरखते पथ थे शकनायका ।

सुगत-स्वागत-आनंद-सिन्धुमें
 सब निमग्न हुए नर-नारि यों,
 सुन्दर दर्शनको शक-चन्द्रके
 समझते सबके, हृदयान्वित थे ।

पथिक जो कहना सम भागमें
 पणिसस्य गरी या पूर्ये —
 " यदि नगर कथया स्वर्गात्पुत्र
 नृप-दुःखान् कथयन्तु नृप-सौख्यं "

वंशत्य

सुना जमी भूपतिने कि द्वारपै
 खड़े हुए राजकुमार भिक्षु-से,
 हुए महाशुब्ध प्रकोप-युक्त वे,
 तुरन्त वासत्य विलीन हो गया ।

न साथ है भूपतिका वरिद्रिका,
 न सान्य नीलाम्बरका कयायका,
 किरीटके योग्य न नग्न मुंड है,
 प्रभुत्वका प्रेम न निर्धनत्वसे ।

उठे जरा-श्रेत स्व-गुंफ पेंदने,
 स-रोप उर्वीपति दौन पामने,
 समस्त सामन्त-समेत गंहरने
 तुरन्त ही कंधित-ओट हो जाते ।

१८—निर्वाण

शार्ङ्गलविक्रीडित

काशीसे वृष-यानसे यदि कभी ईशानको जाइए,
आगे है शुभ सारनाथ-महि जो है पुण्यशीला महा;
यों ही जाकर पाँच-सात दिनमें आती वही मेदिनी,
लोगोंसे बहुधा हिमाद्रि-हिम भी देखा जहाँसे गया ।

फूलोंसे फलसे लदे झुक रहे हैं मंजु शाखी जहाँ,
शोभासे परिपूर्ण हैं अति घनी आरामकी राजियाँ;
वृक्षोंकी पड़ती जहाँ सुरभिता छाया मनोमोहिनी,
जाते ही नर-चित्त-वृत्ति लहती स्वर्गीय आनन्द है ।

काले प्रस्तरपै जहाँ जम रहे प्राचीन वल्मीक हैं,
अस्वत्थादि अनेक दीर्घ तरुकी हैं श्रेणियों शोभना,
संख्याको जब मन्द मन्द बहता आराममें दातु है,
होती है तदि-राशि भूमि-जलकी संवद्ध आनन्दसे ।

वैठे श्रीभगवान, और जनता वैठी उन्हें धेरके,
 आई थी सुनने स-हर्ष सुखदा जेया गिरा मुक्तिदा,
 देती सन्मति जो सदा कुमतिको, निर्वृत्ति उद्विग्नको,
 धिख्याता भव-पाशको विकट जो है खंड-धारा-समा ।

वैठे श्रीभगवानके निकट ही राजा महामोदसे,
 चारों ओर प्रसिद्ध शाक्य कुलके सामन्त आसीन थे,
 आये थे प्रिय देवदत्त संगमें आनन्द शारेय भी,
 कैसी ज्ञान-प्रधान शाक्यमुनिकी सिद्धास्पदा थी सभा ।

चारों ओर इतस्ततः निरखता सारंगके शाव-सा,
 बेटा राहुल पासमें जनकके था चैलको खींचता;
 गोपा श्रीभगवानके चरणमें वैठी महामोदसे
 पीड़ाएँ जिसकी वियोग-जनिता सारी व्यतीता हुई ।

कैसा प्रेम विशुद्ध बुद्ध-प्रति था, स्वर्गीय आनन्द था,
 भोगा जा सकता कभी अवनतिमें जो इन्द्रियोंसे नहीं,
 आया जीवन ताप-तम तनमें, तृष्णा मिट्टी भौतिकी,
 गोपा तो अब सदा ही सुगतकी अर्धांगिनी हो गई ।

जायाकी अब नव्य-जावनमयी संजीविनी-सी मिली,
 देती शाश्वत आयु जो, न जिससे आती कभी वृद्धता,
 देती अविनाशक देत जिसको आती नहीं मृत्यु भी

आये जो सुनने त्रिलोकपतिकी वाणी महा मोक्षदा,
 संख्या थी उनकी अनन्त, गणानातीता महाशेषसे,
 थे प्रत्यक्ष खड़े, परन्तु उनसे लाखों गुने और भी
 अप्रत्यक्ष असंख्य पितृ-सुर भी संवोध-सुश्रूषु थे ।

सारी देव-अदेव-लोक-अवली यों शून्यगर्भा हुई,
 मानों सृष्टि समस्त ताप-भवसे थी पीडिता आ गई,
 पापी नारकमें पड़े सड़ रहे, वे भी चले मुक्त हो,
 तोड़ा बन्धन बोधसे निरयका, एकत्र हो आ गये ।

सारी चेतन-सृष्टिकी प्रिय लगी शुद्धा गिरा बुद्धकी
 थे सारंग मृगेन्द्र-संग सुखसे बैठे लवा-श्येन थे,
 उत्साहान्वित वीचि-संग जलमें थे कूदते मीन भी,
 आये कीट-पतंग भी जत्र वहाँ तो अन्यकी क्या कथा ?

चारों ओर फले हुए विटपपै बैठे हुए कीश थे,
 संख्या भी अनुराग-रंग-साहिता थी झाँकती अद्रिसे,
 आई सुन्दर यामिनी उदित हो पूर्वा दिशासे मुदा
 जो थी मंजु तुषार-रश्मि-धवला संस्तुत्य नीलाम्बरा ।

कैसी सुन्दर क्रोड थी प्रकृतिकी, कैसा सुखी काल था,
 शीता सौरभ-गर्भिता अचपला थी वायुकी संपदा,
 क्या ही पूर्ण निशेश-तुल्य मुखसे वाणी कढ़ी मुक्तिदा,
 हो निस्तब्ध सभी चराचर गये, श्रीबुद्धने यों कहा—

“ ऐसा है वह शून्य ब्रह्म जिससे आकाश भी स्थूल है,
 पारावार अगाध भी न जिसकी पाते कभी थाह हैं ।
 जाना आदि न अंत भी न जिसका ब्रह्मा तथा विष्णुने,
 सत्ता है जिसकी अखंड जगमें, ब्रह्माण्डका मूल जो ।

“ सो है गोचर बुद्धिको न मनको तो नेत्रकी क्या कथा ?
 जहापोह मृपा मनुष्य-मतिका, सो कल्पनातीत है ।
 दृश्या केवल कार्य-कारणमयी संसारकी योजना,
 धूमि जो बन काल-चक्र जगमें सत्ता सुराराधिता ।

“ जैसे सूर्य स्वकीय स्वर्ण-करसे कीलालको खींचता,
 जो हो अम्बुदकी घटा गगनमें सर्वसहा सींचता,
 प्राणी-मात्र तथैव कर्म-वश हो संसारमें घूमते,
 है आयान-प्रयाण काल-गातिसे कीला हुआ जीवका ।

“ ब्रह्मा नित्य अपार सृष्टि रचते, श्रीनाथ हैं पालते,
 स्वेच्छासे प्रतिवार नष्ट करते कंकालमाली उसे,
 क्या आश्चर्य त्रिदेव कर्म-वश हैं, सारे पराधीन हैं,
 एका केवल ब्रह्म-शक्ति रहिता है काल-कर्मादिसे ।

“ सोता रंक निशीध-मध्य, उठता प्रत्यूषमें भूप हो,
 राजा भी बनता अकिंचन कभी, संसार निस्सार है,
 ऐसा चक्र अलक्ष्य-भेद-युत हो ब्रह्माण्डमें घूमता,
 भूमें क्या स्थिरता, महान सुख क्या, विश्राम क्या, शान्ति क्या ?

“ देखो शक्ति सनातनी यह चही है कर्मके देपमें,
 धारे है जड़-जंगमादि सबको जो धर्मके नाममें,
 कन्द्याणी जगका निसर्ग फरती है तिमिरखण्डोन्मुखी,
 ऐसी शाश्वत-रूपिणी कि रहिता है आदिसे अंतसे ।

“ है सर्वत्र प्रवृत्त जो गतिवती सत्ता परब्रह्मकी,
 सो है नित्य, अमोघ, सत्य, सरुला, संभाषिनी, शाश्वती,
 नाया शान्ति-स्वरूपिणी, छविमयी, कञ्जाण-संयोजिनी,
 शुद्धा, ब्रह्म-विकार-सार-सरसा, आद्यन्तसे हीन है ।

“ प्राणी जो करते वही भुगतते, बोते वही काटते,
 पीड़ा, दुःख, विषाद, शोक फल हैं पापाश्रिता वृत्तिके,
 जो है पुण्य-प्रसाद पूर्व-कृतका सो हेतु है सौख्यका,
 देखो कर्म-प्रधान विश्व जिसकी सीमा ध्रुवा शक्ति है ।

“ क्यों अंभोत्रि पयोद-रूप रखता ? क्यों मेघ होता नदी ?
 क्यों इंद्रानिल शीतमें उमड़ता ? क्यों ग्रीष्म निर्वात है ?
 कैसे पल्लव-पुष्प-युक्त वनमें दावाग्नि है व्यापती ?
 देवो, चेतन-शक्ति एक प्रभुकी पूढा अद्वय्या महा ।

“ जो मन्वन्-गग प्रवृत्ति रखके संसारको झेलना,
 मारे दृग्व स-हृष भोगकर जो कञ्जाणको खोजता,
 जो तनीय विन्दु स्याद्युक्त हो, औदार्यमें पूर्ण हो,
 जगती जीवन्-दानमन्-मन्त्रिण हो, जीवन् वही मुक्त है ।

• देवो, जो वह सारके पुरुष है वैरा सत्ता-जीवन्में,
 जो दारिद्र्य-अज्ञाना देव रहना भी सिद्ध है, मन्त्र है,
 मन्त्र-कर्म-मन्त्र-मन्त्र-मन्त्र, मन्त्र-मन्त्र-मन्त्र-मन्त्र,
 मन्त्र-मन्त्र-मन्त्र-मन्त्र-मन्त्र, मन्त्र-मन्त्र-मन्त्र-मन्त्र

“ है सर्वत्र प्रवृत्त जो गतिवती सत्ता परब्रह्मकी,
 सो है नित्य, अमोघ, सत्य, सकला, संभाविनी, शाश्वती,
 नाया शान्ति-स्वरूपिणी, छविमयी, कल्याण-संयोजिनी,
 शुद्धा, ब्रह्म-विकार-सार-सरसा, आचन्तसे हीन है ।

“ प्राणी जो करते वही भुगतते, बोते वही काटते,
 पीड़ा, दुःख, विषाद, शोक फल हैं पापाश्रिता वृत्तिके,
 जो है पुण्य-प्रसाद पूर्व-कृतका सो हेतु है सौख्यका,
 देखो कर्म-प्रधान विश्व जिसकी सीमा भुवा शक्ति है ।

“ क्यों अंभोधि पयोद-रूप रखता ? क्यों मेव होता नदी ?
 क्यों ज्ञानानिल शीतमें उमड़ता ? क्यों ग्रीष्म निर्वात है ?
 कैसे पल्लव-पुष्प-युक्त वनमें दावाग्नि है व्यापती ?
 देखो, चेतन-शक्ति एक प्रभुकी गूढ़ा अदृश्या महा ।

“ जो सत्कर्म-परा प्रवृत्ति रखके संसारको झेळता,
 सारे दुःख स-हर्ष भोगकर जो कल्याणको खोजता,
 जा गंभीर दिनत्र न्याययुत हो, औदार्यसे पूर्ण हो,
 प्राणी जीवन-वासना-रहित हो, जीना वही मुक्त है ।

“ देखो, जो वह सामने पुरुष है बैठा सभा-शोभने,
 जो दारिद्र्य-अथर्व देण पड़ता सो सिद्ध है, सुख है,
 चाकरहकर सदैव दान करता, मिथ्या नहीं बोलता,
 तीनों हैं एक बलको कुलुम-नी हिंसा, सुग, सुखी ।

“ ऐसे ही जन वृत्ति-बंधन दिना देगे नये सुख है,
 तीनों जो इनकी पत्नी बहू-पत्नी, तीनों परा-पत्नी ही,
 तीनों ही इनके विरहीत हुए हैं, तीनों ही निरास हैं,
 कर्म-व्यभिचारीन रत्न-अर्थ-हीन ना-बोले-से ।

“ श्रद्धावान, सुजान, धीर, सुकृती, गंभीर, योगी, गृही,
जो हैं शुद्ध-चरित्र वीर विनयी, निर्वाण पाते वही,
प्राणी जो उपकारमें निरत हैं, वे सौख्य ही भोगते,
नाना क्लेश उटा-उठाकर अधी होते दुखी नित्य ही

“ जो हैं प्रेम-दया-समुद्र जन वे निर्वंधके पात्र हैं,
श्रद्धा है जिनमें निवास करती वे भक्तिके सिंधु हैं,
सृष्टामें अनुराग नित्य रखते, वे धर्ममें लीन हैं,
प्राणी जो निज कर्ममें निरत हैं वे स्तुत्य हैं, पूज्य हैं ।

“ भाई, इन्द्रिय-भोगसे गुरुतरा कोई नहीं वागुरा,
द्वेषीसे बढ़के न हीन जगमें, क्लेशी न आसक्त-सा,
हिंसासे अधिका न दुष्कृति कहीं देखी गई विश्वमें,
निर्वाणास्पद हैं वही विरत हों जो उक्त दुर्वृत्तिसे ।

“ श्रद्धा-भक्ति-पयस्विनी, गतिवती, सत्कर्म-संग्राहिनी,
सौख्यावर्तमयी, विमुक्त-सुखदा, पुण्य-प्रसूनावृता,
सर्वांशा जिसमें निगूढ़ रहती सद्धर्म-रत्नावली,
सो निर्वाण-स्वरूपिणी वह चली पीयूष-धारा नदी ।”

वाणी श्री भगवानकी उस घड़ी गंभीरभावा हुई,
प्राणी-मात्र निमग्न हो वचनमें डूबे सुधा-सिंधुमें,
ऐसा भाव अगाध था न तलको पाते कभी शेष भी,
वाणी भी न समीप थी पहुँचती, ब्रह्मा न सानिध्यमें ।

सारी रात्रि समन्तभद्र सबको संवोत्र देते रहे,
ऐसा ज्ञान-प्रकाश था कि अधिका राका हुई उज्वला,
निद्रा, मोह, प्रमाद और जड़ता संसारसे यों उठे,
माया-नाटककी यथा यवनिका आतुर्यसे ही उठी ।

तारा शुक्र प्रभात-अग्रसर हो प्राची दिशामें उगा,
 प्रातः वायु चला हिमाद्रि-तटसे, आशा हुई रंजिता,
 शोभा मंजुल नव्य जीवनमयी फैली मुदा विश्वमें,
 सारे जीव उठे स-हर्ष सुनके पीयूष-वाक्यावली ।

भूके ऊपर एक दिव्य सुखका संचार होने लगा,
 प्राणी-मात्र प्रसन्न हो सुगतकी आज्ञा लगे मानने,
 छाया धर्म-प्रभाव भूमि-तल्पै, हिंसा मिटी सर्वथा,
 नाना दान-विधानसे नर लगे सद्धर्मको पालने ।

माहेयी श्रुति विप्रको, नृपतिको उर्वी हुई श्रृंगिणी,
 उक्ता वैश्य-समूहको कृषि हुई, सेवा सुरा शूद्रको,
 चारों वर्ण प्रसन्न-चित्त रत थे श्रीबुद्ध-संवोधमें,
 हृवे धर्म-पयोधिमें मिट गया संसारका ताप था ।

राजा भी सुन धर्म धैर्य धरके ऐसे विरागी बने,
 भूला ध्यान स्व-देहका जनक-से ब्रह्मर्षि ही हो गये,
 हो संवृद्ध पशोधरा वन गई संन्यासकी पुत्तली,
 शुद्धा ब्रह्म-स्वरूपिणी सुगतकी सर्वाग्निनी हो गई ।

सारे द्वेष, कुभाव, दंभ, लालच या दारिद्र्यकी आदर,
 पीडा, शोक, विषाद, रोग भयमें पाते निरोजन थे,
 यों ही नीच परस्त्र-मूढगण-परा पापंठ्या गंठनी,
 जाके सप्त संसृत्यके प्रिनिर्जद धी नानरोप हई ।

ऐसा शुद्ध प्रभाव बुद्धप्रभुका फैला धरा-धाममें
 भागी निस्वनतामयी कुमति भी, डंका वजा ज्ञानका,
 जागे जीव-समूह धर्म-मय हो निद्रा गई पापिनी,
 देनेको जगको सदाचरणकी शिक्षा चले भिक्षु भी ।

यों ही श्रीभगवान देश-भरमें संवोध देते रहे
 भूले या भटके मनुष्य उनसे पाते महा मार्ग थे,
 ऐसी ज्योति जगी समस्त महिमें सन्मार्ग सारे खुले
 लोगोंने प्रभु-मंत्र ले स-कुल की निर्वाणकी साधना ।

ध्यानावस्थित हो जिसे निरखते योगी, यती, संयमी,
 जो है भानु-कृशानु-कारणमयी त्रैलोक्य-उद्गासिनी,
 ऐसी ज्योति जगी कि भूमि-तलपै आनन्द होने लगा,
 भक्तोंके प्रतिगेहमें द्रुत हुई कल्याणकी स्थापना ।

आस्था वेद-पुराणमें बढ़ गई ऊँची ध्वजा धर्मकी,
 श्रद्धा गो-द्विजमें जगी अतिशया क्षोणी हुई हर्षिता,
 गंगा पावन प्रेमकी अविनिपै ऐसी वही सर्वगा
 डूवा विश्व कृपानिधान प्रभुकी लीलामयी भक्तिमें ।

वंशस्थ

सदा इसी भाँति समस्त देशको
 अनूप देते उपदेश धर्मका,
 महा महामैत्र समन्तभद्रको
 व्यतीत पेंतालिस वर्ष हो गये ।

चलायमाना गति है त्रिलोककी
 विलीयमाना सत्र विश्व-संपदा
 शकेश मानों इस एक सत्यको
 चले पुनः स्थापनको नृलोकमें ।

विदेह हो, केवलज्ञान-मग्न हो,
 अनंग हो, संतृप्ति-अंग-लग्न हो,
 अनादिकालीन प्रभा प्रसारके
 अनन्तदेशीय शकेश हो गये ।

व्यतीत धा देह-अशीति-वर्ष भी
 न शेष भू-भार, न शेष भार था,
 अतः, महामंगल-राशि, अन्तमें,
 चले कुशी-नामक एक ग्रामको ।

समीर पंखा झलता स-हर्ष था,
 चला सुखाता श्रम-चारि-चुन्द भी,
 वितान धा अंवरमें पयोदका
 विद्या रहे पुष्प-समूह वृक्ष थे ।

पुनः पुनः श्रीघन-पाद-पद्मको
 त्रिलोकने अन्तिम वार प्रेमसे,
 छिपे कर-पाम-ममेत निग्धमे,
 स-सर्गिक अस्तंगत भानु हो गये ।

हुए महा मंगल धाम-धाममें,
 स-पुत्र माता निकलीं निकेतसे,
 प्रमुग्ध हो धेनुक धेनुसे मिले,
 चले सभी स्वागतको शकेशके ।

न जानते थे वह आज रातको
 प्रयाण होगा जगसे शकेशका;
 मनुष्यता है अति स्वार्थतत्परा
 स-प्रेम जिज्ञासु हुई स्वधर्मकी ।

समीप ही नाथ विशाल शालके
 शयान हो शुद्ध प्रसन्न भावसे
 स-हर्ष देते उपदेश धर्मका
 बिता रहे थे वह काल-यामिनी ।

कुर्शा-निवासी श्रुति-विज्ञ भूपसे
 प्रशान्त प्रश्नोत्तर जो हुआ वहाँ,
 मुमुक्षुओंके सब भाँति सर्वदा
 विचारने योग्य अवश्यमेव है ।

‘यथार्थ क्या ?’ ‘कर्म-प्रधान विश्व है;’
 ‘विचार्य क्या ?’ ‘केवल स्वीय धर्म ही;’
 ‘भयावहा क्या ?’ ‘पर-धर्म-वासना;’
 ‘विधेय ?’ ‘कर्तव्य;’ ‘विजेय ?’ ‘देह है ।’

‘हितैपणा क्या ?’ ‘जगकी समृद्धि ही,’
 ‘सदैव क्या है परिहार्य ?’ ‘पाप ही,’
 ‘अधर्म क्या ?’ ‘पीडन;’ ‘धर्म ?’ ‘साधना;’
 ‘अधिष्ठिता ?’ ‘शक्ति;’ ‘अधीश ?’ ‘ब्रह्म है ।’

‘अकार्य ?’ ‘हिंसा;’ ‘प्रभु-कार्य ?’ ‘दान है;’
 ‘अदेय ?’ ‘निष्ठा;’ ‘अभिधेय ?’ ‘सत्य है;’
 ‘प्रशस्य ?’ ‘चिन्ता निज देश-बन्धुकी;’
 ‘रहस्य ?’ ‘निःश्रेयस-लाभ-युक्ति है ।’

‘अनादि क्या ?’ ‘जन्म;’ ‘अनन्त ?’ ‘मृत्यु है;’
 ‘अनाद्यनन्ता ?’ ‘गति निर्विशेषकी;’
 ‘प्रमाण क्या ?’ ‘सम्मत वेद-शास्त्रका;’
 ‘विधेय क्या ?’ ‘पूजन देव-पितृका ।’

शार्दूलविक्रीडित

“हेया है जगमें प्रपंच-रचना, श्रेया निकुंजावली,
 देया संपति दीन-हीन जनको, ज्ञेया कथा शम्भुकी,
 ध्येया प्रेम-प्रपत्ति है रसमयी, पेया सुधा मुक्तिकी,
 जेया इन्द्रिय-शक्ति है, स्व-मति है नेया सदा ब्रह्ममें ।”

दृढविलंबित

इस प्रकार तथागत प्रेमसे
 स-मुद उत्तर देकर भूपको,
 मनसि इन्द्रियज्ञान समेटके
 मन किया लय सन्दर प्राणमें ।

अहह ! घोर असुन्दर काल भी
 परम सुन्दरतामय हो गया,
 सुगत अंतिम दर्शन दे यदा
 सहित देह तिरोहित हो चले ।

जगत-दृश्य अदृश्य शनैः, शनैः,
 समय भी गत-भाव हुआ उन्हें,
 पर न शिष्य निराश्रय-से लसे,
 प्रकृति-निःस्वन नीरव हो चला ।

रवि तिरोहित हो रह-सा गया,
 ग्रहण-युक्त हुआ द्विजराज भी,
 गगन यों गुण-हीन बना तदा
 कि वन-वैभव अ-स्वर हो गया ।

इस महाभयकारक कालमें
 प्रकृत-निर्भय बुद्ध अर्भात थे,
 चमकती उनके मुखपै लसी
 अमर-भेद-समुत्थित भावना ।

रजत-पत्र-समुज्ज्वल भालपै
 छविमयी प्रभुता रत-नृत्य थी,
 परम वैभव-पूर्ण समा रही
 युगल लोचनमें अभिरामता ।

अमरता उनके प्रतिश्वाससे
 तनु-प्रवेश तदा करने लगी
 अमर कीर्ति विहाय नृ-लोकमें
 चल दिये प्रभु यों निज धामको ।

त्वरित शब्द हुआ घन-नाद-सा
 सब दिशा व्यनुनादित हो उठीं,
 घनिमयी वन नीरव रोदसी
 परम दिव्य प्रकाशवती हुई ।

लख पड़ा तब जो उस ज्योतिमें
 वह अतीव अलौकिक दृश्य था,
 लख पड़ी घन-ब्राह्मणकी ध्वजा
 फहरती नभ-मंडलमें मुदा ।

ककुभमें दश वारण भी लसे,
 धरणिपै रथ देख पड़ा वही,
 लख पड़ा वह उज्ज्वल चक्र भी,
 पणव-आनक-गोमुख भी बजे ।

फिर प्रशान्त हुई सब रोदसी
 सकल संतृप्ति धर्म-मयी हुई,
 अमर-वृन्द सभी सुखमें सने,
 वन गई गत-भार बलुन्धरा ।

शार्दूलविकीर्णित

व्याप्त है पटचक्र-नाभ्य किनकी आभासुक्ता दरा,
 शुद्धा दृष्टि हृदयमें परिगता, संज्ञा-मूर्ति-जो,
 जो पञ्चाक्षर दैव ध्यान परसे नाशकमें रही दे,
 दे गोपीधर-नन्द नीलम सदा दीपक हृदय में ।

राकानायक निष्कलंक, मणि भी कार्कश्यसे मुक्त हो
 तेजोराशि पतंग स्वीय पदसे पीयूष वर्षा करें,
 तो भी नीरज, रत्न, और खगमें वैसी कहाँ योग्यता,
 ऐसे वाद-विवाद-ग्रस्त जनकी सिद्धार्थ वाधा हरे ।

पुंजीभूत समस्त आर्त जनकी अभ्यर्थना बुद्ध हैं,
 मूर्तीभूत अनूप शाक्य-नृपके सौभाग्य सर्वार्थ हैं,
 एकीभूत रहस्य हैं निगमके, संसारके सार हैं,
 श्वेतीभूत-स्वरूप शून्य विभुके साकार सिद्धान्त हैं ।

समाप्त

कठिन शब्दोंका कोश

अ-आ

- अकांड=असमय ।
 अकिंचना=शक्ति, धन-हीना ।
 अक्षुभार=समुद्र, सूर्य ।
 अग=वृक्ष, पेड़ ।
 अग्रग=आगे जानेवाला ।
 अगद=ओषधि, दवा ।
 अव=दुःख, पाप, राहु ।
 अचेष्ट=निष्क्रिय ।
 अजल=सदा, निरंतर ।
 अजाज=शकरीका दवा ।
 अजाजीव=शकरी चरानेवाला ।
 अजिन=मृगका चर्म ।
 अजिन-अंबर=तपस्वी, भक्त ।
 अजिर=आँगन ।
 अटवी=जंगल, वन ।
 अणी=नोक, पैनी कोर ।
 अट्टपवाद=दोनों वादोंसे इतर वाद ।
 अट्टि=पर्वत, पहाड़ ।
 अधः, अधो=नीचे ।
 अधित्यका=अटारी, पर्वतकी ऊपरकी भूमि ।
 अधुव=अनिश्चित ।
 अनघ=शिव, पाप-रहित ।
 अनभित्तंग=दिना सायक ।
 अनीक=सेना ।
 अनुजीपिनी=हेपिवा, यामी ।
 अनुभावन=वर्तित दीहना ।
 अनुदीपन=सादीपिते देहना ।

- अनुष्ण=गर्मीते रहित ।
 अनूरु-सारथी=सूर्य ।
 अनूरु-रथ=सूर्य ।
 अपनोदन=दूर करना ।
 अपांग=कटाक्ष ।
 अञ्ज=कमल, चन्द्रमा ।
 अन्द=वर्ष ।
 अभ्र=मेघ, बादल ।
 अभ्रसु=देरावतकी स्त्री ।
 अभर्तुका=विधवा, पति-हीना ।
 अभावी=न होनेवाला ।
 अभिचारिणी=तंत्र-मंत्र करनेवाली ।
 अभिज्ञ=ज्ञाता ।
 अभिजित्=एक नक्षत्र ।
 अभीष्टग=आरथार, लगातार ।
 अभीष्टु=लगाम ।
 अन्यर्थना=प्रार्थना ।
 अमरावती=देवताओंकी पुरी ।
 अमृत=देवता, मुधा ।
 अमिताभ=अभिज तेजनाले, हजदेव ।
 अमोघ=अवर्ध ।
 अयस=लोहा ।
 अयुत=शरीर, असुख ।
 अर्थ=पुस्त ।
 अर्थदनु=जो जे लक्षके भर्त, -हजदेव ।
 अर्थक=लक्षक, पुन ।
 अर्थक=लक्षक, पुन ।
 अर्थक=लक्षक, पुन ।
 अर्थक=लक्षक, पुन ।

आनन्द-लाल, महानर ।
 आनन्द-अतिशयासीसी चर्मी ।
 आनन्द-वत ।
 अतिर-वसामरा ।
 अरुण-शुभ, अत, सुन्दर, महान् ।
 अरुण-अरुण होगिवापी ।
 अविनाश-वर्षा विषयों कल न
 कदापि न, अभिनय, -वृत्तिव ।
 अविनाश-वर्षा विषयों कल न
 अरुण-वत ।
 अरुण-वत ।
 अरुण-वत ।
 अरुण-वत ।
 अरुण-वत ।
 अरुण-वत ।
 अरुण-वत ।

आरती-चक्र, भौर ।
 आशा-रिशा ।
 आशय-भगोवा, अवश ।
 आसता-निकरता ।
 आस्था-विश्राम ।
 आरुण-वत, वेदता ।

इ-ई

इन्द्रीवर-कमल ।
 इन्द्र-निभ-द्वारी के समान ।
 इन्द्र-मोचिका-वीरवृत्ति ।
 इन्द्र-मोचिका-वीरवृत्ति ।
 इन्द्र-मोचिका-वीरवृत्ति ।
 इन्द्र-मोचिका-वीरवृत्ति ।
 इन्द्र-मोचिका-वीरवृत्ति ।
 इन्द्र-मोचिका-वीरवृत्ति ।

न-न

उरु=जंघा ।

उल्का=पुच्छ= तारा ।

उर्वी=पृथ्वी ।

उत्तास=टंडी सौंघ ।

उदीरिता=उत्पन्न की गर्द, निकाली गई ।

उस्ता=एक प्रकारकी गां ।

जर्भि=तरंग ।

ए-ओ-अं

एकाकी=अकेला ।

एण=मृग । एणी=मृगी ।

ओष=समूह ।

अंकन=पहरेवालोंकी एक प्रकारकी बोली ।

अंगराग=देहमें लगानेका चूर्ण, पाउडर ।

अंभि=पैर, जंघा ।

अंचित=पूजित, उत्थित ।

अंबर=कपड़ा, आकाश ।

अंश=कंधा ।

अंशु=किरण ।

अंशुक=रेशमी कपड़ा ।

क

ककुभ=दिशा ।

कच=चाल ।

कदन्न=लखा-दूखा अन्न ।

कदन्ध=पानी, वर्षा ।

कदरी=वेणी ।

कमलासन=ब्रह्मा ।

कमलांगज=कमलसे उत्पन्न ।

कपितांग=दुबला ।

करक=ओला ।

कर्क=एक राशिका नाम, -कैंकड़ा ।

करद=कर देनेवाला मनुष्य ।

करणु=हाथीका दया ।

कलविंग=एक छोटा पक्षी, नौरैस्या ।

कल्प=काल-परिमाण, तुल्य ।

कलाधर=चन्द्रमा, कलाकार ।

कलापी=मयूर ।

कवि=शुक, कविता करनेवाला ।

कप=कसीटी ।

कशा=कोड़ा, चाबुक ।

कातर=अधीर ।

कादम्बिनी=मेषमाला

कान्त=प्रिय, सुन्दर ।

कान्तार=वन, जंगल ।

कारण्य=भीस्ता, कृपणता ।

कारिका=गाहरे दार्शनिक विचारयुक्त कविता, गीत, संगीत ।

काह=चढ़ई ।

काशिनी=प्रकाशिनी ।

कासार=तालाब ।

किजल्क=पराग ।

किरीटी=राजा, अर्जुन ।

कित्तलय=पत्ते, पत्र ।

कीलाल=जल, मृगजल ।

कुंचित=टेढ़ा ।

कुनुइती=कुनुदिनी ।

कुन्त=भाला, नेजा ।

कुंतल=चाल ।

कुलाय=घोंसला ।

कुलाल=कुम्हार ।

कुशेदय=कमल ।

कोक=चकवा-चकई ।

कोकनद=कमल ।

कोदंड=धनुर ।

कोपष्टिका=दिट्टिहरी ।

क्रेन्कार=हंसकी बोली ।

क्रोड़=गोद ।

कौश=रेशम ।

कौशेय=रेशमी ।

कृत्ति=त्तचा, खाल ।

कंथा-शोणा=केवल चिथड़े पहने हुए ।

ख

खनित=खोदा हुआ, निहित ।

खन्नी=तलवारखाले ।

खनि=खान, आकर ।

खस्ताय=वायु ।

खारित=खाये हुए ।

ग

गायक=चंगीरिणी ।

गद=योग

गग्नि=बड़ा

गगीयगी=बड़ी

गदमान=बड़ी ।

गदय=जतनी गाय ।

गदय=जतनी गाय ।

गदर=लटक, गुप्त ।

घ

घनसार=चंदन ।

घनान्त=शरद् ऋतु ।

घंटा-मार्ग=राजमार्ग, आम रास्ता ।

च

चक्र-वात=वायुका बगूला ।

चटक=एक छोटा पक्षी, चिड़िया ।

चतुर्हायनी=एक प्रकारकी उत्तम गाय ।

चमूरु=मृग, काला मृग ।

चरम=अन्तिम ।

चर्चमाण=खाया जाता हुआ ।

चरिण्यु=चलनेवाला ।

चाभीकर=रोगना ।

चंभम=बार-बार चलना ।

चन्द्रशाला=चटशाल ।

चन्द्रद्वार=तलवार, चौदगी ।

चिन्तु=वाल ।

चिन्तन=कमानन ।

चेल=वस्त्र ।

जाती=एक प्रकारका पुष्प, चमेली ।
जाया=ज्योति ।
जिज्ञासु=जाननेकी इच्छा रखनेवाला ।
जीमूत=मेघ ।
जीवक=साँप नचानेवाला ।
जीविता=जीवन ।
जीवन=जानी ।
जेया=जीतने योग्य ।

ज्ञ

ज्ञान (ज्ञ)=मछली ।
ज्ञाति=शीघ्र ।
ज्ञापन=ज्ञाईसँ छिपी हुई भूमि ।
ज्ञकृति=शब्द, आवाज़ ।
ज्ञप्ता=तीव्र वायु ।

ट

टिडिम=एक वाजा ।

त

तथागत=बुद्धदेव ।
तनुवाय=जुलाहा ।
तन्द्रा=निद्रा ।
तनुरुह=रौंछाँ, रोम ।
तनूज=पुत्र ।
तपन=सूर्य ।
तमिस्रहा=सूर्य ।
तमी=रात्रि ।
तल्प=दिछीना, पलंग ।
तदीय=तुम्हारा ।
त्परित=शीघ्र ।
तादात्म्य=तार्किकता ।
तार=कैला ।
तारिणी=न्याय करनेवाली प्रणाली ।
तारिणी=एक कवि मन्त्री ।

तिरोहित=अस्त, दृष्टिसे बाहर ।
त्रिदिवेश=इन्द्र, देवतागण ।
त्रियामा=रात्रि ।
त्विपा=प्रकाश, ज्योति ।
तुरीया=चतुर्थावस्था ।
तुषार=पाला, बर्फ ।
तुहेन=हिम ।
तुहिन-दीधिति=चन्द्रमा ।
तुहिन-धूम=कुहरा ।
दूणीर=शरोंका कोप ।
तैलाभ्यंगा=तेलसे भीगी हुई ।
तोम=स्तोम, ढेर ।
तोरण=दरवाजेकी मेहराब ।

द

दक्ष=एक प्रजापति । कुशल ।
दायित=प्रिय ।
दर्भ=कुशा ।
दव (दाव)=चनकी अग्नि ।
द्वन्द्वातीत=दोनोंसे पर, अलग ।
द्विज=पक्षी, दाँत, ब्राह्मण ।
द्विजिह्व=साँप ।
द्विफाल=दो भाग ।
द्विरद=राथी ।
द्विरेष=भ्रमर ।
द्वेष=दो प्रवृत्तियाँ ।
दाम=रस्सी ।
दासिवा=वन्द्यता ।
दासिप=अनुयायी ।
दक्षिण=दक्षिण ।
दीधिति=ज्योति ।
दीधिति=ज्योति ।
दीधिति=ज्योति ।
दीधिति=ज्योति ।

... 1, 2, 3 ...



सुग्धि-सुग्धा, गाय ।
 सुग्ध-एक प्रकारकी गाय ।
 सुग्धना-सुग्धाजी ।
 सुग्ध-सोच, सुन्दर चरित्रवाला ।
 सुग्धा-सुग्धकी इच्छा करनेवाले ।
 सुग्-एक जाति, रंग भ करनेवाला ।
 सुग्-जामा ।
 सुग्-एकका ।
 सुग्नी-जेनापति ।
 सुग्-वायुके युक्त ।
 सुग्-घोडा ।
 सुग्नी-नीकरानी ।
 सुग्कोश-सुग्शब्द ।
 सुग्-मीठी ।
 सुग्-महल ।
 सुग्-चलना ।
 सुग्-जग हुआ ।
 सुग्-जिवन-जिवना ।
 सुग्-चन्द्र कोश ।
 सुग्-संभ्रमसारिणी-चक्ररानेवाली ।
 सुग्-संभ्रम-गौरव, सितपिटाना ।
 सुग्-संभार-पालन ।
 सुग्-संयत-शासित ।
 सुग्-संस्तुति-जगत ।
 सुग्-संश्लेष-चिह्न, इशारा ।
 सुग्-संश्रय-आश्रय
 सुग्-संहति-समूह ।

सुग्धि-आमकी लपट ।
 सुग्धि-एक ।
 सुग्धि-कर्मिण, गत ।
 सुग्धि-जमें ।
 सुग्धि-जैत, योग ।
 सुग्धि-कामदेव ।
 सुग्धि-गाय ।
 सुग्धि-संभ्रमवाला ।
 सुग्धि-सोचिनी-चरी ।
 सुग्धि-अधिकार ।
 सुग्धि-अधिकारी स्त्री ।
 सुग्धि-घोडा
 सुग्धि-विष्णु, सिंह ।
 सुग्धि-वायुवायु-बेटी हुई ।
 सुग्धि-वायु ।
 सुग्धि-दिमाहारे-दिमाहारे ।
 सुग्धि-सोना ।
 सुग्धि-अम, दूरी ।
 सुग्धि-संभ्रम-शब्द ।
 सुग्धि-सूर्य, एक पक्षी ।
 सुग्धि-रात्रि ।
 सुग्धि-क्षमा ।
 सुग्धि-क्षीरोदन-खीर ।
 सुग्धि-क्षोणी-पृथ्वी ।
 सुग्धि-क्ष्वेड-गरल, विष ।



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	श्लोक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९	४	४	द्रत	द्रुत
४८	२-४	२-३	उद्भुत	अद्भुत
५२	१	४	विशद	विपाद
५६	१	३	साम्राज्ञि	सम्राज्ञि
८२	१	२	सरु	सरि
८६	१	१	तोरणादि	तोरणादि
८६	३	४	सुवासान्तिकता	सुवासान्तिकता
९५	२	३	सुमुन्नत	समुन्नत
१३५	३	४	डई	डुआ
१३७	१	१	प्रागाढ	प्रगाढ
१९०	२	१	कीकाल-स्वरूप	कीकाल-स्वरूप
१९८	५	१	सान्वनाको	सान्वना दे
२११	३	२	सुमिष्ट	सुमिष्ट
२११-१२	५-३	१	स्वादु-युक्त	स्वाद युक्त
२१८	२	१	जोम्ना	जोम्ना
२२३	३	२	राजिनी	राजिनी
२२३	५	१	निम्नगा	निम्नगा
२२७	२	०	ली त	ली त
२७१	३	३	मरजी	मरजी

सूचना - इस पत्र में हम शुद्धि पत्र के अन्तर्गत सूचित की है कि इस पाठ्यपुस्तक में जो शुद्धि सूचित की है वह सही है।

